

## पुनः प्रकाशन

—बहुत समय से यह पुस्तक 'जैनधर्म की उदारता' अनुपलब्ध थी, और इसकी निरन्तर माँग आती रहती है। अतः इसकी नूतन आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। उसके यह कुछे मुद्रित पृष्ठ आपकी सेवा में प्रेषित हैं। इस आवृत्ति में पीछे मुद्रित नामवाले महानुभावों की सम्मतियाँ तो छपेंगी ही,

किन्तु मेरी तीव्र अभिलाषा है कि इस पुस्तक में आपकी भी महनीय सम्मति प्रकाशित हो, जिससे इसके महत्त्व में और भी वृद्धि हो सके।

अतः आपसे सानुरोध निवेदन है कि अपनी सम्मति एक सप्ताह के भीतर ही मेरे निम्नांकित पत्र पर भेजने की कृपा करें, ताकि इसी आवृत्ति में उसका उपयोग किया जा सके।

जनेन्द्र प्रेस,  
ललितपुर (उ. प्र.) }

आपका—  
परमेश्वरीदास जैन.  
२५-१-७६

# जैन धर्म की उदारता

## पापियों का उद्धार

जो प्राणियों का उद्धार हो उसे धर्म कहते हैं। इसी विषय में वा ध्यापक, स्वार्थ या उदारता का आवश्यक है। जहाँ नकुचित दृष्टि है, स्वयं का पक्षपात है, शारीरिक भेदभाव ईसाई के कारण आन्तरिक गान-उँठपने का भेदभाव है वहाँ धर्म नहीं हो सकता। धर्म आत्मिक होता है शारीरिक नहीं। शारीरिक दृष्टि से तो कोई भी मायाय पवित्र नहीं है। शरीर सभी अपवित्र है। इसलिये आत्मा के स्वार्थ ही धर्म का सम्बन्ध बनना विशेष है। लोग जिस शरीर का भय से भ्रम हैं इस शरीर यात गुणित में भी पाये हैं, जोर जिनके शरीर मोक्ष पमने जात हैं वे भी गुणन को प्राप्त हुए हैं। इसलिये यह भविष्यद् निश्चय है कि धर्म पमक में नहीं कि तु आत्मा में होता है। इसलिये जैन धर्म इस बात का स्पष्टणय प्रतिपादन करता है कि मायेक प्राणी अपना सुकृत व अनुसार उस पद प्राप्त कर सकता है। जैन धर्म का मुख्य लक्ष्य है कि उसका हृदय सदैव कर्मे राधदा मुक्त है। इस बात को स्पष्टप्राप्त्य म इस प्रकार स्पष्ट किया है -

अनाथानामवंधूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् ।

निजशासनमेतद्धि परमं शरणं मतम् ॥

अर्थात्—जो अनाथ हैं, बांधवविहीन हैं, दारिद्र्य अत्यन्त दुखी हैं उनके लिये जैन धर्म परम शरणभूत है ।

यहां पर कल्पित जातियों या किसी वर्ण का उल्लेख करके सर्व-साधारण को जैनधर्म को ही एक शरणभूत बताया गया है । जैनधर्म में मनुष्यों को तो बात नया, पशु पक्षी प्राणि-मात्र के कल्याण का विचार किया गया है ।

आत्मा का सच्चा हितैषी, जगत के प्राणियों को पार लगवाला महा मिथ्यात्व के गड्ढे से निकालकर सन्मार्ग आरुढ़ करा देने वाला और प्राणिमात्र को प्रेम का पाठ पढ़वाला सर्वश्रेष्ठ-कथित एक जैन धर्म है ।

जैनधर्म सिखाता है कि अहम्मन्यता को छोड़कर मनुष्य से मनुष्यता का व्यवहार करो प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखें और निरन्तर परहित-निरत रहो । मनुष्य ही नहीं, पशुपक्ष तक के कल्याण का उपाय सोचो और उन्हें घोर दुःसदाचान से निकालो ।

धर्मशास्त्र-इसके उत्तम प्रमाण है कि जैनाचार्यों ने हाथी सिंह शृगाल शूकर, बन्दर तोता, आदि प्राणियों को धर्मोपदेश देकर उनका कल्याण किया था ( देखो आदिपुराण पर्व १० श्लोक १४६ इसीलिये महात्माओं को 'अकारणवंधु' कहकर पुकारा गया है । हर सच्चे जैन का कर्तव्य है कि वह मनुष्य दुःखचारी को भी धर्मोपदेश देकर उसका कल्याण करे ।

इस समयमें मैं अनेक उदाहरण जैन शारंगों में पाये जाते हैं यथा  
 (१) जिनमल धनदत्त सेठ ने महा-यत्नो वे-प्राप्त हृद-  
 य को फासी पर लट्का हुआ देखकर यही उम जमोकार  
 दिया था जिसके प्रभाव से वह वापात्मा पुण्यात्मा बनकर  
 य गति को प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् यही दय धनदत्त सेठ  
 ही स्तुति करता हुआ कहता है :-

अहो धेष्ठिन् ! निनाधीश्वरणाचनरोविद ।

अ, चांग महापापी हृदयवाभिधानर ॥३१॥

स्वत्प्रगादेन भो स्वामिन् स्मर्ते साधनमगर :

देवा महर्दिको जातो मात्वा पूर्वमप मुधा ॥३२॥

— आराधनाकथा ० २३ वीं ।

अर्थात्—जिन धरण-पूजन में कुशल दे ओही ! मैं हृद-  
 य नामक महापापी और आपक प्रमात् से मोक्षम रगत में  
 उद्दिधारी हूँ हुआ हूँ ।

इस कथा से यह तात्पर्य निकलता है कि प्रत्येक जैन का  
 नैष्ठिक महापापी की भी पाप माग से निकलकर स्वभाव में  
 जाता है । जैनमर्म में यह श्लोक है कि यह मर्म भविष्ये ॥  
 अ करके शुभ गति में पहुँच सकता है । यदि नैष्ठिक का  
 द्वारता पर दिया जाता है तो स्व-मालूम होना कि इसमें  
 पेशपदमें पाते ही योग्यता है अथवा जैनधर्म की दिग्गम  
 हो सकता है । जैनपापी से लेते योग्यता की पुष्टि  
 लाया है कि उनको कयाये सुनकर पाठक आश्चर्यचकित रह  
 जायेंगे अथ -

(२) अनंगसेना नामक वेश्या अपने वेश्या कर्म को छोड़ कर जैन-दीक्षा ग्रहण करती है और जैनधर्म की आराधना करके स्वर्ग में जाती है । (३) यशोधर मुनि ने मत्स्यमत्सी मृगसेन धोवर को रामोकार मन्त्र दिया और व्रत ग्रहण कराया जिससे वह मर कर श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुआ । (४) कपिल ब्राह्मण ने गुरुदत्त मुनि को आग लगाकर जला डाला, फिर भी वह पापी अपने पापों का प्रायश्चित्त करके स्वयं मुनि हो गया । (५) ज्येष्ठा नामक आर्यिका ने एक मुनि से शीलभ्रष्ट होकर पुत्र प्रसव किया, फिर भी वह पुनः शुद्ध होकर आर्यिका हो गई और स्वर्ग गई । (६) राजा मधु ने अपने मारुडलिक राजा की स्त्री को अपने यहां बलात्कारपूर्वक रख लिया और उससे विषय-भोग करता रहा, फिर भी वह दोनों मुनि-दान देते थे और अन्त में दोनों ही दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में गये । (७) शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भु ने व्यभिचार किया, बाद में वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकान्ता नामक आर्यिका के पास गई और दीक्षा लेकर गई । (८) वेश्यालंपटों अंजल चोर उसी भव से मोक्ष जा जैनियों का भगवान बन गया । (९) मत्स्यमक्षी मृगध्वज मुनिदीक्षा ले ली और वह भी कर्म काटकर परमात्मा बन ग । (१०) मनुष्यमक्षी सौदास राजा मुनि होकर उसी भव से मो गया । (११) यमपाल चाण्डाल की कथा तो जैनधर्म की उदार प्रगट करने के लिये सूर्य के समान है ।

जिन चाण्डाल का काम लोगों को फांसी पर लटका प्राण-नाश करना था वही अच्युत कहा जाने वाला पापात्मा था से व्रत के कारण देवी द्वारा अभिषिक्त और मुक्त हो गया

यथा—

तदा तद्वन्माहात्म्यान्महाधर्मानुरागत ।  
मिहायने समारोप्य देवताभिः पुर्मर्जले ॥२६॥  
अमिषिच्य ग्रहण दिव्यैर्गन्धिभि मुध्री ।  
नानातनमुरणाद्यः पूजित परमादरात् ॥२७॥

अर्थात्—उस यमपाल आणाल कोवन के माहात्म्य से तथा धर्मानुराग से दया न मिहानन पर विराजमान करके उसका शुभफल में समर्पित किया और फिर उसका अनेक घण्टे तथा आभूषणों में सम्मान दिया उसकी पूजा की ।  
इतना ही नहीं किन्तु राजा न भी उस आणाल के प्रति मन्त्राभूषण होकर उससे क्षमा मागना का, तथा स्वयं भी उसकी पूजा की । यथा—

त प्रभाय समालोक्य रात्राद्य परया मुदा ।  
अभ्यर्चिताः स मातंगो यमपालो गुणोभ्यत ॥२८॥

अर्थात्—जब आणाल के प्रा-प्रभाव को देखकर राजा तथा राजा न बहुत ही दय के साथ गुणों से समुपल उस यमपाल आणाल की पूजा की ।

यह है यथा मानवीय आदर उदारता । गुणों के सामने तो हीन जाति का विचार हुआ और न उसका अपमान ही होती गई । साथ यह आणाल के दयमान होन के कारण ही उसका अभिषेक और पूजन तक किया गया । यह है जीवनमें ही उदारता और उसके विषय का एक नमूना । इसी प्रकार

में जाति-भेद न करने की शिक्षा देते हुए स्पष्ट लिखा है—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः ।

तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते ॥३०॥

अर्थात्—व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा गया इसालये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति की उच्चता का गर्व नहीं करना चाहिये ।

यहाँ जाति-भेद का कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है। जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर जाति पांति का पचड़ा तोड़कर और वर्ण-भेद को महत्त्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों को ही कल्याणकारी बताया है । अमित्रगति आचार्य ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है :

शीलवन्नो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि ।

कुलोनाः नरकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः ॥

अर्थात् जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुआ कहा जाता वे शील धर्म को धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिनके संव में उच्च कुलीन होने का भेद किया जाता है ऐसे दुराचार मनुष्य नरक गये हैं ।

जैन धर्म की यह विशेषता है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति से नागरण हो सकता है । मनुष्य की बात तो दूर रही भगवान् समस्त भद्र के कथनानुसार तो—

“आऽप देवोऽप देवः श्वा जायते धर्मशिल्पिपात् ।”

अर्थात्—धर्मधारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है ।

## उच्च और नीचों में समभाव

जैनाचार्यों ने यह यह पर स्वयं उपदेश दिया है कि प्रायेक  
 ज्ञातु को धर्ममार्ग प्रदर्शनायो, उस दुष्कर्म छोड़ने का उपदेश  
 । और यदि यह सबो शक्ति पर आजाये तो उग्रव साध  
 पु स्वयं व्यवहार करो । स्वयं जान तो यह है कि उँवों को  
 यह नहीं पताया जाता । य ना स्वयं उँव हैं हा मीतर को  
 यह है पश्यन्तु है । पशित है, उ है आ उग्र पर पर स्थित  
 यह पनी उग्र पर पर भवता भव है । यह पश्यो हय पशित—  
 पन जैनपत्र में है । इन लक्षण में भगवाणी न कई स्थानों  
 स्वयं विवेचन किया है । पद्याध्यायीकार ने विवृतिकरण  
 का विवेचन करते हुये लिखा है।

गुह्यिनीकरण नाम परपो मदनुप्रदात् ।

अष्टनां स्वयंपात्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥८७॥

अर्थात्—जिन पर से अष्ट हुये लोगों को अनुमद पूर्ण  
 की पर में पुनः स्थित कर देना ही विवृतिकरण कह्य है ।

इससे यह सिद्ध है कि साष्टे जिन प्रकार से अष्ट या  
 १२ हुय स्थित की पुनः पुनः कर लेना चाहिये और उछे  
 १२ का नाम स्वयं पर पर स्थित कर देना चाहिये । यहो धर्म  
 साधनविषय भव है । निर्विषयिदेखा अंग का अर्थन करते



में जाति-मद न करने की शिक्षा देते हुए स्पष्ट लिखा है—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः ।

तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते ॥३०॥

अर्थात्—व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा ग  
इसालिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति की उच्चता  
गर्व नहीं करना चाहिये ।

यहाँ जाति-मद का कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है। ज  
जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर जाति पाँति का प  
तोड़कर और वर्ण-भेद को महत्त्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों  
को ही कल्याणकारी बताया है। अमृतमति आचार्य ने इसी च  
वात को इन शब्दों में लिखा है :

शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि ।

कुलीनाः नरकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः ॥

अर्थात् जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुआ कहा जाता है  
वे शील धर्म को धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिनके संबंध  
में उच्च कुलीन होने का मद किया जाता है ऐसे दुराचारी  
मनुष्य नरक गये हैं ।

जैन धर्म की यह विशेषता है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति न  
से नारायण हो सकता है । मनुष्य की बात तो दूर रही  
भगवान् समस्तमद के कथनानुसार तो —

“चाऽप देवोर्जप देवः श्वा जायते धर्मदिल्लिपात् ।”

अर्थात्—धर्मधारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और  
पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है ।

उच्च और नीचों में समभाव

जैनाचार्यों ने यह ग्रन्थ पर स्पष्ट उपदेश दिया है कि प्रत्येक  
 शीशु का धर्ममार्ग बनना जो उस दुष्कर्म छोड़ने का उपदेश  
 है और यदि वह मर्त्य रास्ते पर जाजाये तो उसके साथ  
 क्षुब्ध सम व्यवहार करो। मन्त्र वात तो यह है कि ऊँचों को  
 क्षुब्ध नहीं बनाया जाता। यना स्वयं ऊँच हैं हाँ मगर जो  
 वह हैं पदच्युत हैं पतित हैं, उन्हें जा उस पक्ष पर स्थित  
 पद प। उदार पक्ष मन्त्रा धर्म है। यह गुरु इस पतित—  
 पत जैनधर्म में है। इन मन्त्राध में जैनाचार्यों ने कई स्थानों  
 स्पष्ट विवेचन किया है पञ्चाध्यायीकार ने स्थितिकरण  
 का विवेचन करते हुये लिखा है

सुस्थितीकरणं नाम परपा मदनुग्रहात् ।

अष्टनां स्वपञ्चत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥८७॥

अर्थात्—निज पद से अष्ट द्वये लोगों को अनुग्रह पूर्वक  
 वी पद में पुन स्थित कर देना ही स्थितिकरण अह्न है ।

इससे यह सिद्ध है कि चाहे जिस प्रकार से भ्रष्ट या नष्ट हुए व्यक्ति का पुनः शुद्ध कर लेना चाहिये और उसे एक आनन्द उच्च पद पर स्थित कर देना चाहिये । यही धर्म वास्तविक अर्थ है । निमिचित्तिता अर्थ का पूर्ण कर ले

हुये भी पंचाध्यायीकार ने इसी प्रकार उदारतापूर्ण कथन है। यथा -

दुर्देवाद्दुःखिते पृंसि तीव्रासाताघृणास्पदे ।

यन्नादयापरं चेतः स्मृतां निर्विचिकित्सकः ॥

अर्थात्- जो पुरुष दुर्देव के कारण दुखी है और असाता के कारण घृणा का स्थान बन गया है उसके अदयापूर्ण चित्त का न होना हो निर्विचिकित्सा है ।

निरन्तर धर्म की कोरी चर्चाये करने वाले हम सम्यक्त्व के इस प्रधान अंग को भूल गये हैं और अभिमान वशीभूत होकर अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं । तथा दरिद्रा और दुखियों को नित्य दुकरा कर जाति मद में रहते हैं । ऐस आभमानियों का चेतावनो देते हुए पंचाध्यायी ने स्पष्ट लिखा है : -

नैतत्तन्मनस्यज्ञानमस्म्यत् सम्पदां पदम् ।

नासावस्मन्ममो दीनो वराको विपदां पदम् ॥५८४॥

अर्थान्-मनमें हम प्रकार का अज्ञान नहीं होना चाँकि मैं श्रामान् हूँ, गढ़ा हूँ, अतः यह विपत्तियों का मारा दरिद्रो मेरे समान नहीं हो सकता ।

प्रत्युत प्रत्येक दीन-हीन व्यक्ति के प्रति समानता व्यवहार रगना चाहिये । जो व्यक्ति जातिमद या धनमत्त होकर अपने को बड़ा मानता है वह मूर्ख है, अज्ञानी और जिसे मनुष्य तो क्या प्राणीमात्र सदृश मालूम हों

सम्यग् दृष्टि है, यही ज्ञानी है यही मान्य है यही उच्च है, यही विद्वान् है, यही विवेकी है और यही सच्चा परिशुद्ध है। मनुष्यों को तो बात क्या अस स्थावर प्राणीमात्र के प्रति सम-भाव रखने का पचाप्यायोकार ने उपदेश दिया है। यथा—

प्रत्युत नानमतेतत्तत्र कमपिपाकना ।

प्राणिन उदशा नर्वे तसम्यग्दृष्टिर्नयः ॥५॥५॥

अर्थात्—हीन मान प्राणियों के प्रति घृणा नहीं करना चाहिये प्रत्युत ऐसा विचार करना चाहिये कि कर्मों के मारे यह जीव बल और स्थावर योनि में उत्पन्न हुये हैं लेकिन है सब समान ही।

इस प्रकार जीवात्माओं न ऊँच नीच का भेदभाव रखने वाले को महा ज्ञानी बताया है और प्राणी मात्र पर सम भाव रखने वाले को सम्यग्दृष्टि और सच्चा ज्ञानी कहा है। इन बातों पर हमें विचार करने की आवश्यकता है। जनधर्म की उदारता को हमें अब काय रूप में परिणत करना चाहिये। एक सच्चे जैनों के हृदय में न तो जाति भेद हो सकता है न पेश्वे का अभिमान और न पापी या पतितों के प्रति घृणा हो जा सकती है। प्रत्युत यद्य तो उन्हें पश्चिन्न बनाकर अपने आसन पर बिठावेगा और जनधर्म की उदारता की जगह में ध्यास करने का प्रयत्न करेगा।

## जातिभेद का आधार आचरण है

दोई हजार वर्ष पूर्व जब लोग जाति-भेद में मत्त होकर मनमाने अत्याचार कर रहे थे और मात्र ब्राह्मण ही अपने को धर्माधिकारी मान बैठे थे तब भ० महावीर ने अपने दिव्योपदेश द्वारा जनता में व्याप्त जाति-मूढ़ता निकाल फेंकी और तमाम वर्ण एवं जातियों को धर्म धारण करने का समान अधिकारी घोषित किया था। यही कारण है कि स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने एकवार अपने यह आन्तरिक उद्गार प्रगट किये थे—

“ब्राह्मण धर्म में एक त्रुटि यह थी कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को समानाधिकार प्राप्त नहीं थे। यज्ञ यागादिक कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे। क्षत्रिय और वैश्यो को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। और शूद्र बेचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे थे। जैनधर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।”

इसमें सन्देह नहीं कि जैनधर्म ने महान् अथम से अथम और पतित से पतित शूद्र कहलाने वाले मनुष्यों को उस समय अपनाया था जबकि ब्राह्मण जाति उनके साथ पशुतुल्य व्यवहार कर रही थी। जैनधर्म का दावा है कि घोर पापी से पापी या अथम नीच कदा जाने वाला व्यक्ति जैनधर्म की

शरण लेकर निष्पाप और उद्य हो सकता है। यथा -

महापापप्रकर्ताऽपि प्राणी श्रीजैनधर्मतः ।

मवेत् त्रैलोक्यमपूज्यो धर्मात्किं भो पर शुभम् ॥

अर्थात्—घोर पाप करने वाला प्राणी भी जैनधर्म धारण करने से त्रैलोक्यपूज्य हो सकता है।

जैनधर्म की उदारता इसी बात से स्पष्ट है कि इसको अमनुष्य देव तियच और मारको समो धारण करके अपना कल्याण कर सकते हैं। जैनधर्म पाप का विरोधी है पापी का नहीं। यदि वह पापी का भी विरोध करमे लगे उनसे क्षमा करके लगे जाये तो फिर किसी भी अधम पर्याय वाला प्राणी उद्य पर्याय को कभी प्राप्त ही नहीं कर सकेगा और हो-छुमाशुभ कर्मों को तमाम व्यवस्था ही बिगड़ जायगी।

जैन शास्त्रों में धर्म धारण करने का ठेका किसी धर्म या जाति को नहीं दिया गया है, किंतु मन यत्न काय से सभी प्राणी धर्म धारण करने के अधिकारी बनाये गये हैं। यथा—

“मनावावायधमाय मता मर्वपि जन्तव ।”

—श्री गोमटबुद्धिः ।

ऐसी ऐसी आचार्य प्रमाण और उपदेश जैन शास्त्रों में मिले पड़े हैं फिर भी सङ्कुचित दृष्टि वाले आतिथन में मत्त होकर इन बातों की परवाह न करके अपने को ही सर्वोच्च समझकर दूसरों के कल्याण में अथरदस्त बाधा डाला करते हैं। ऐसे व्यक्ति जैनधर्म की उदारता को नष्ट करके स्वयं को पाप का बन्ध करते ही हैं साथ ही पतितों के उद्धार में,

अवनतों की उन्नति में और पदच्युतों के उत्थान में बाध होकर घोर अनर्थ करते हैं।

उनको मात्र भय इतना ही रहता है कि यदि नीच कहलाने वाला व्यक्ति भी जैनधर्म धारण कर लेगा तो फिर हम में और उसमें क्या भेद रहेगा ! किन्तु वे यह नहीं सोच पाते कि भेद होना ही चाहिये इसको क्या जरूरत है ? जिस जाति को वे नीच समझते हैं उसमें क्या सभी लोग पापी, अन्यायी, अत्याचारी या दुराचारी होते हैं ? अथवा जिसे वे उच्च समझे बैठे हैं उस जाति में क्या सभी लोग धर्मात्मा और सदाचार के अवतार होते हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो फिर हमें किसी वर्ण या जाति को ऊँच या नीच कहने का क्या अधिकार है ?

हाँ, यदि भेदव्यवस्था करना ही हो तो जो दुराचारी है उसे नीच और जो सदाचारी है उसे ऊँच कहना चाहिये । श्रीवैरवि-पेणाचार्य ने इसी बात को पद्मपुराण में इस प्रकार लिखा है :-

चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं ।

सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धं भुवने गतम् ॥

अर्थात् - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या चाण्डालादि व तमाम विभाग आचरण के भेद से ही लोक में प्रसिद्ध हुआ है

इसी बात का समर्थन और भी स्पष्ट शब्दों में आचार्य अमृतगति ने इस प्रकार किया है :-

आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम् ।

न जातित्रातृणीयास्ति नियता क्वापि तात्त्विकी ॥

गुणैः संपद्यन्ते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते ॥

अर्थात् शुभ और अशुभ आचरण के भेद से ही जातियों में भेद की कल्पना की गई है । ब्राह्मणादिक जाति कोई कहीं निश्चित, पारम्परिक या स्थाई नहीं है । कारण कि गुणों के होने से ही उच्च जाति होता है और गुणों के नाश होने से उस जाति का भी नाश हो जाता है ।

साधिये ! इससे अधिक स्पष्ट सुन्दर तथा उद्धार कथन और क्या हो सकता है ? अमिताभति आचार्य ने उक्त कथन में यह स्पष्ट घोषित किया है कि जातियाँ कार्मणिक हैं वास्तविक नहीं । उनका विभाग शुभ और अशुभ आचरण पर आधारित है, न कि जन्म पर, तथा कोई भी जाति स्थायी नहीं है । यदि कोई गुणों से तो उसका जान उच्च है और यदि कोई दुर्गुणों से तो उसकी जाति नष्ट होकर नीच हो जाता है । इससे सिद्ध है कि नीच से नीच जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति भी शुद्ध होकर जैनधर्म धारण कर सकता है और यह उतना ही पवित्र हो सकता है जितना कि जन्म से धर्म का अधिकारी माना जाने वाला कोई भी जैन होता है । प्रत्येक व्यक्ति जैनधर्म धारण कर आत्मरक्षणा कर सकता है । यही किता जातिविशेष के प्रति राग द्वेष नहीं है, किन्तु मात्र आचरण पर ही दृष्टि रखी गई है । जो चाहे ऊँच है वही कल अमायों के आचरण करने से नीच भी बन जाता है । यथा—

“अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचर ।”

— रघुवैराचार्य ।

जैन समाज का कर्तव्य है यह इन—आचार्य-याकों पर विचार करे, जैनधर्म की उदारता की समझे और दूसरों



को निःसंकोच जैनधर्म में दीक्षित करके उन्हें अपने समान बनाले । कोई भी व्यक्ति जब पतितपावन जैन धर्म को धारण करले तब उसको तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार दे देना चाहिये और उसे अपने भाई से कम नहीं समझना चाहिये । यथा -

विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः ।

जैनधर्मे पराः शन्तमास्ते सर्वे बांधवोपमाः ॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो आचरण के भेद से कल्पित किये गये हैं, किन्तु जब वे जैनधर्म धारण करते हैं तब सभी को अपने भाई के समान ही समझना चाहिये ।

## वर्ण-परिवर्तन

कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि जाति भले ही बदल जाय मगर वर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता । उनकी यह भूल है क्योंकि वर्ण-परिवर्तन हुये बिना वर्ण की उत्पत्ति एवं उसकी व्यवस्था भी नहीं बन सकती । जिस ब्राह्मण वर्ण को सर्वोच्च माना गया है उसकी उत्पत्ति पर तनिक विचार कीजिये, तो मालूम होगा कि वह तीनों वर्णों के व्यक्तियों में से उत्पन्न हुआ है । आदिपुराण में लिखा है कि जब भरत राजा ने ब्राह्मण वर्ण स्थापित करने का विचार किया था तब राजाश्री को आशंका दी थी कि -

मदाचारिर्नर्जनिर्दूरवृज्जीविभिरन्विताः ।

अथास्मदुन्मन्त्रं यूयमायातेति प्रथक् प्रथक् ॥ (पर्व ३८-१०)

अर्थात् - आप लोग अपने सदाचारों इष्ट मित्रों सहित तथा नौकर चाकरों को लेकर आज हमारे उत्सव में आओ ।

इस प्रकार भरत चमत्कर्ती ने राजा प्रजा नौकर चाकरों को बुलाया था, उनमें क्षत्री, वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के लोग थे । उनमें से जो लोग द्वारे प्रभुर को मदन करते हुये राज-मदल में पहुँच गये उन्हें तो चमत्कर्ती ने निकाल दिया और जो लोग द्वारे पास का मदन न करके बाहर हो पड़ रहे या लौट कर वापिस आने लगे उन्हें रोककर विधिपूर्वक ब्राह्मण बना दिया । इस प्रकार तीन वर्णों में से धिक्को और दयानु लागों को ब्राह्मण वर्ण में स्थापित किया गया ।

अब यहाँ विचारणीय बात यह है कि जब शूद्रों में से भी ब्राह्मण बनाये गये, वैश्यों में से भी बनाये गये और क्षत्रियों में से भी ब्राह्मण तैयार किये गये तब वर्ण अपरिघटनीय कैसे माना जा सकता है ?

दूसरी बात यह है कि तीन वर्णों में से छोट कर एक छोटा वर्ण तो पुरुषों का तैयार हो गया किन्तु उन नये ब्राह्मणों की छियाँ कैसे ब्राह्मण हुई होंगी ? कारण कि वे तो महाराजा भरत द्वारा आमन्त्रित का नहीं गई थीं क्योंकि उनमें राजा लोग और उनके नौकर चाकर आदि हो आये थे । उनमें सब पुरुष ही थे । यह बात इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि उन सब ब्राह्मणों का यशोवतीत पहनाया गया था । यथा—

तेषां कृतानि चिन्हानि सूत्रे पञ्चाह्वयानिधे ।

उपासीं ब्रह्मसूत्रार्द्धरकाधेकादशान्तक ॥ (पर्व ३-२१) ;

अर्थात्—पञ्च नामक निधि से ब्रह्मसूत्र लेकर एक से ग्यारह तक ( प्रतिमानुसार ) उनके चिन्ह किये । अर्थात् उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया ।

यह तो सर्वमान्य है कि यज्ञोपवीत पुरुषों को ही पहनाया जाता है । तब उन ब्राह्मणों के लिये स्त्रियाँ कहां से आई होंगी ? कहना न होगा कि वही पूर्व की पत्नियाँ जो क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र होंगी ब्राह्मणी बना ली गई होंगी । तब उनका भी वर्ण परिवर्तित हो जाना निश्चित है । शास्त्रों में भी वर्णोन्नति करने वाले को अपनी पूर्व पत्नी के साथ पुनर्विवाह करने का विधान पाया जाता है । यथा—

“पुनर्विवाहसंस्कारः पूर्वः सर्वोऽस्य संमतः ।”

आदिपुराण पर्व ३६-६० ॥

इतना ही नहीं, किन्तु पर्व ३६ श्लोक ६१ से ७० तक के कथन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैन ब्राह्मणों को अन्य मिथ्या दृष्टियों के साथ विवाह संबंध करना पड़ता था, बाद में वे ब्राह्मण वर्ण में ही मिल जाते थे । इस प्रकार वर्णों का परिवर्तित होना स्वाभाविक सा हो जाता है । अतः वर्ण कोई स्थाई वस्तु नहीं है, यह बात सिद्ध हो जाती है । आदिपुराण में वर्ण परिवर्तन के विषय में अक्षत्रियों को क्षत्रिय होने के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:

“क्षत्रियाश्च वृत्तस्थाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः ।”

इस प्रकार वर्ण-परिवर्तन की उद्धारता बतला कर जैन धर्म ने अपना मार्ग बहुत ही सरल एवं सर्वकल्याणकारी बन

है । यदि पुन इसी उदार पथ धार्मिक मार्ग का अवलम्बन  
 न जाय तो जैन समाज की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है  
 र अनेक मानव जैनधर्म धारण करके अपना कल्याण कर  
 सके हैं । किसी घण या जाति को स्पर्श या गगानुगतिक मान  
 जैनधर्म का उदारता की हत्या करना है । यहा तो कुला  
 र को छोड़ने से कुल भी नष्ट हो जाता है । यथा—

स्त्रियधि कुलाचारधरण स्यात् द्विपन्मन ।

तस्मिन्मत्पर्या नष्टप्रियोऽन्यदुल्लसतां नजेत् ॥१८१॥

—आदिपुराण पर्य ४०

अर्थ—प्राज्ञाओं को अपने इस की मर्यादा और कुल के  
 गौरों की रक्षा करना चाहिये । यदि कुलाचार धारणों का  
 न नहीं का जाय तो यह व्यक्ति अपने कुल से नष्ट होकर  
 मरे कुल वाला हो जायगा ।

तात्पर्य यह है कि जाति, कुल, घण आदि समा क्रियाओं  
 निमग्न हैं । इनके विगड़ने-सुधरने पर इनका परेचयन हो  
 ता है ।



## गोत्र-परिवर्तन

आश्चर्य है कि सदा आगम और शास्त्रों की दुहाई वाले कितने ही लोग वर्ण को तो अपरिवर्तनीय मानते हैं साथ ही गोत्र की कल्पना को भी स्थाई एवं जन्मगत मानते हैं ! किन्तु जैन शास्त्रों ने वर्ण और गोत्र को परिवर्तन होने देताकर गुणों की प्रतिष्ठा की है तथा अपनी उदारता का प्राणी मात्र के लिये खुला कर दिया है । दूसरी बात यह है गोत्रकर्म किसी के अधिकारों में बाधक नहीं हो सकता । संबंध में यहाँ कुछ विशेष विचार करने की आवश्यकता है।

सिद्धान्त-शास्त्रों में किसी कर्म प्रकृति का अन्य प्रकृति रूप होने को संक्रमण कहा है । उसके ५ भेद होते हैं उद्वेलन, विध्यात, अथ प्रवृत्त, गुण और सर्व संक्रमण । १ से नीच गोत्र के दो संक्रमण हो सकते हैं । यथा—

सत्तणं गुणसंकमनधापवत्ता य दुक्खमनुद्वगदी ।

संति संटाणदसं णोचापुण्णथिरुक्कं च ॥४२२॥

वीमरुं विज्झादं अवापवत्तो गुणो य मिच्छते ॥४२३॥

—गो० कर्मकाण्ड

अनातादेशनीय अशुभ गति, ५ संहनन, ५ संस्थान, नां गोत्र अपर्याप्त अस्वियादि ६, इन २० प्रकृतियों के विध्यात

वृत्त और गुण सम्मेल्य होते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार असाता वेदनीय का वेदनीय के रूप में सम्मेल्य परिवर्तन) हो सकता है उसी नीच गोत्र का उँच गोत्र के रूप में भी परिवर्तन (प्रण) होना सिद्धा तथार्थों से सिद्ध है । अतः किसी को से भरने तक नीचगोत्री हो मानना दयनीय भ्रम है ।

सिद्धान्तशास्त्र पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि कोई नेच या अधम से अधम व्यक्ति उँच पद पर पहुँच सकता है । यह पावन बन सकता है ।

यह तो सभी जानते हैं कि जो व्यक्ति अज लोकहृष्टि में है वही कल साकमाय प्रतिष्ठित पय महान् हो जाता भगवान् अकलपुदेय ने राजपतिक में उँच नीच गोत्र की ।कार व्याख्या की है

।दयात् लोक्पूजितेषु इलेषु जन्म तदुच्चर्गोत्रम् ॥

।तु यत्तु तन्नीचर्गोत्रम् ॥

।तु दरिद्राऽप्रतिज्ञातदुःखाः इलेषु यन्मृत प्राणिनां

तन्नीचर्गोत्रं श्रयतव्यम् ॥

उँच—नीच गोत्र की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि जो जित प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेने हैं वे उच्चगोत्री हैं और गर्हित अर्थात् दुखी दरिद्रा कुल में उत्पन्न होने हैं वे नीची हैं । यद्वा कि ॥ भी यथ का अपेक्षा नहीं रखी गई ब्राह्मण होकर भा यावे यह निच पय शानहीन में है तो नीच गोत्र वाला है और यदि श्रद्धा होकर

भी राजकुल में उत्पन्न हुआ है अथवा अपने शुभ कर्म  
प्रतिष्ठित हो गया है तो वह उच्च गोत्र वाला है।

[ आज भी हारजन मितिसूत्रों को आदर पूर्वक सहे दिया जाता है—और उन्हें जैन मंदिरों में ले जाया जाता है ]

वर्ण के साथ गोत्र का कोई भी सम्बन्ध नहीं। कार्य गोत्रकर्म की व्यवस्था तो प्राणीमात्र में सर्वत्र है, किन्तु व्यवस्था केवल भारतवर्ष के मानवों में ही पाई जाती है। व्यवस्था मनुष्यों की योग्यता के अनुसार केवल श्रेणी है, जबकि गोत्र का आधार कम है। अतः गोत्र कर्म कुल अथवा व्यक्ति की प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा के अनुसार उच्च और नीच गोत्री हो सकता है। इस प्रकार गोत्रकर्म की शास्त्रीय व्यवस्था स्पष्ट होने पर जैनधर्म की उदारता स्पष्ट ज्ञात हो जाती है। होने से ही जैनधर्म पतितपावन या दीनोद्धारक सिद्ध होता है।

## पतितों का उद्धार

जैनधर्म की उदात्तता पर ज्यों ज्यों गहरा विचार किया है  
है त्यों त्यों उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती है। जैनधर्म ने प्रा-  
पतक्षियों को पवित्र किया है, दुर्गचारियों को सन्मार्ग  
नाया है, दीनों को उन्नत किया है और पतितों का उद्धार  
अपना जगद्गुरुत्व सिद्ध किया है। यह सब इतने मात्र  
निष्ठ हो जाता है कि जैनधर्म में वर्ण और गोत्र की कोई  
अवस्था या अन्तर्गत न्याय नहीं है। जिन्हें जाति का कोई अभि-  
मान है वे जैन ग्रन्थकारों ने स्पष्ट शब्दों में यह लिखा है -  
आ. मा. १०० अ. १०० कर दिया है कि -

न रिश्रिप्रयोग्नि मर्षधा गुदशीलता ।  
 कलननाम्नि गात्रे स्खलन क न जायते ॥  
 मयमा नियम शील तपो दान दमो दया ।  
 रिद्यन्त नात्विक्का यस्या सा जातिर्महती मता ॥

अर्थात्—ब्रह्मण और ब्रह्मण्य की सर्वथा शुद्धि का दाया दिया जा सकता क्योंकि इस अनादिकाल से ॥ जाने के बुल या मोघ में कथ पतन हो गया हो ! अत यास्त्वय - दाय जानि तो यही है चिममें एतन्मान में स्वयम, नियम । तप दान इन्द्रियदमन और दया पाई जाता है ।

इस प्रकार ग्राह भा अमक घ भों में वर्ण ग्राह ताति को प्राप्ति की धजिग डाई गई है । प्रमेयकनरतमाएड में ही खूनी क साथ चानि-क-पता का खगन्न किया है । इसे मिड है कि जैनधर्म में जानि की अपेक्षा गुणा के लिए ही स्थान है । महा भीर कहा जाने वाला व्यक्ति भी अपने ही से उच्च हो जाता है, भयदूर दुरागरी प्रादुर्ध्वन नेकर प्र हो जाता है ग्राह कना भी पतिन व्यक्ति पान बन ना है । इस समय घ में आक उद्धारण पल दो प्रकरणों दिये गये हैं । उनक अतिरिक्त और भी प्रमाण दिये —

इन्द्राभी कतिवैय महाराज के जीवनपरिण पर यदि । त किया जाय तो ज्ञात होगा कि एक व्यभिचारज्ञात के भी किस प्रकार परम पृथ और जैनेषों का गुण सकता है । उस कथा की भाष यह है— इन्नि नामक



राजा ने अपनी 'कृत्तिका' नामक पुत्री से व्यभिचार किया और उससे कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा—

स्वपुत्रो कृत्तिका नाम्नी परिणीता स्वयं हठात् ।

कैश्चिद्दिनैस्ततस्तस्यां कार्तिकेयो सुतोऽभवत् ॥

इसके बाद जब व्यभिचारजात कार्तिकेय बड़ा हुआ और पिता कहो या नाना (?) का अत्याचार ज्ञात हुआ तब वह विरक्त होकर एक मुनिराज के पास जाकर जैन मुनि हो गया। यथा—

नत्वा मुनीन् महाभक्त्या दीक्षामादाय स्वर्गदाम् ।

मुनिर्जातो जिनेन्द्रोक्तसप्ततत्त्वविचक्षणः ॥

आराधना कथाकोश ६६ वीं कथा।

अर्थात्—वह कार्तिकेय भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार करके स्वगदाया दीक्षा लेकर जिनेन्द्रोक्त सप्त तत्त्वों के ज्ञाता मुनि हो गये।

इस प्रकार एक व्यभिचारजात या आजकल के शब्दों में 'दस्सा' या 'विनैकाचार' से भी गये बीते व्यक्ति का मुनि हो जाना जैनधर्म की उदारता का उल्लेख प्रमाण है। वह मुनि भी साधारण नहीं, उद्भूत विद्वान् और अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुये, जिने सारा जैन समाज बड़े गान्ध के साथ आज भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करता है। किन्तु दुःख का विषय है कि जातिम में मत्त होकर जैन समाज अपने उदार धर्म की भूली हुई और अपने हजारों भाई बहिनों को अपमानित करके उन

‘त्रिनेत्रायार’ या दस्सा बनाकर सदा के लिये धर्म और जाति से बहिष्कृत किये रहता है । जैन समाज का कर्त्तव्य है कि वह स्वामी कार्त्तिकेय की कथा से कुछ धोख-पाठ ले और जैनधर्म की उत्तरता का उपयोग कर । कभी किसी कारण से पतित हुये व्यक्ति को या उसकी सन्तान को सदा लिये धर्म का अनधिकारी बना देना घोर पाप है ।

सन्तान को दूषित न मानकर केवल दोषी व्यक्ति को ही शुद्ध कर लेने के सम्बन्ध में चिनसनाचार्य ने स्पष्ट कथन किया है -

कुतश्चित् कारणाद्यस्य कुलं नशस्तदुपगमम् ।

सोऽपि राजादिमम्मत्स्या गात्र्यत् स्व यदा कुलम् ॥१६८॥

तन्नाम्योपनयार्हस्य पत्रपीत्रात्मिततौ ।

न निषिद्धं हि दीक्षाहं कुले चदस्य पूर्वाः ॥१६९॥

-आदिपुराण, पृष्ठ ४

अर्थ—यदि किसी कारण से किसी के कुल में कोई दूषण लग जाये तो वह राजादि की सम्मति से अपने कुल का जय शुभ कर लेता है तब उसे फिर से यज्ञोपवीतादि लेने का अधिकार हो जाता है । यदि उनके पूज्य होता योग्य कुल में उत्पन्न हुए हों तो उनके पुत्र पौत्रादि सन्तान को यज्ञोपवीतादि लेने का कहीं भी निषेध नहीं है ।

सातत्य यह है कि किसी भी सदोष व्यक्ति की सन्तान दूषित नहीं बहो जा सकती । इतना ही नहीं कि तु भ्रष्टेक दूषित व्यक्ति शुद्ध होकर वीर्य योग्य हो जाता है ।

## दिगम्बराचार्य का संदेश

एक बार इटावा में दिगम्बर जेनाचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—

“जीव मात्र को जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति करने का अधिकार है। जबकि मेढक जैसे तिर्यच पूजा कर सकते हैं तब मनुष्यों की तो बात ही क्या है ! याद रखो कि धर्म किसी की वपौती जायदाद नहीं है। जैनधर्म प्राणी मात्र का धर्म है, पतित पावन है। वीतराग भगवान पूर्ण पवित्र होते हैं, कोई त्रिकाल में भी उन्हें अपवित्र नहीं बना सकता। कैसा भी कोई पापी या अपराधी हो उसे कड़ी से कड़ी सजा दो, परन्तु धर्मस्थान का द्वार बन्द मत करो। यदि धर्मस्थान ही बन्द हो गया तो उसका उद्धार कैसे होगा ? ऐसे परम पवित्र, पतित पावन धर्म को पाकर तुम लोगों ने उसकी कैसी दुर्गति कर डाली है ! शास्त्रों में तो पतितों को पावन करने वाले अनेक उदाहरण मिलते हैं, फिर भी पता नहीं कि जैनधर्म के ज्ञाता बनने वाले कुछ जैन विद्वान उसका विरोध क्यों करते हैं ? परम पवित्र, पावन और उदार जैनधर्म के विद्वान संकीर्णता का समर्थन कर यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। कहाँ तो हमारा धर्म पतितों को पावन करने वाला है और कहाँ आज लोग पतितों के संसर्ग से धर्म को भी पतित हुआ मानने लगे हैं ! यह बड़े खेद का विषय है।”

स्व-आचार्य सूर्यसागर जी महाराज का यह कथन जैन धर्म की उदारता और वर्तमान जैनों की सङ्कुचित मनोवृत्ति की

स्पष्ट सूचित करता है । लोगों ने स्वार्थ कथाय, अज्ञान एवं दुराग्रह से पशोभूत होकर उद्धार जैन मार्ग को कटकाधीर्ण, सपुच्छित एवं भ्रमपूर्ण बना डाला है । अन्यथा जैनकथानुसार महा पापियों का उसी भय में उद्धार हो गया है । एक धीवर (मच्छोमार) की लड़की उसी भय में छुल्लिका होकर स्वर्ग गई । यथा —

तत्र ममाधिगुप्तन मुनीन्द्र ण प्रनल्पित ।  
धर्ममारुण्य जनेन्द्र मुग्धाय समर्पितम् । २४॥  
सत्तात्ता छुल्लिका तत्र तप कृत्वा स्वशक्ति ।  
मृत्वा स्वग ममानाय तम्मादागत्य भूतले । २५ ।

आराधना कथा बोध कथा ४८

अर्थान—मुनि आ ममाधिगुप्त द्वारा निकषित तथा द्रव्यों द्वारा पूजित जिनधर्म का धरण करके काथा नाम की धीवर (मच्छोमार) की लड़की छुल्लिका हो गई और फिर यह यथाशक्ति तप करके स्वर्ग गई ।

जहां मौलमत्ता शुद्ध कथा भी इस प्रकार परियत्र होकर जैनों के लिए पूज्य हो जानी है, वहां उस धर्म की उद्धारता के सवय में ओर क्या कहा जाय ? ऐसे ही अनेक स्थितियों के चारित्र्यों से वेन शास्त्र भरे पड़े हैं । उनसे उद्धारना की शिक्षा ग्रहण करना जैनों का कर्तव्य है ।

यह देख का विषय है कि जिन बातों से हमें परहेज करना चाहिये उनकी धार हमारा भगवत् है और निजके विषय में धर्मशास्त्र एवं लोकायतन गुला भाडा दत्त हैं या जिनके

अनेक उदाहरण हमारे पूर्वाचार्य अपने ग्रन्थों में लिख गये हैं उन पर ध्यान नहीं दिया जाता, प्रत्युत विरोध किया जाता है। हमारे धर्मशास्त्रों ने आचारादि से शुद्ध प्रत्येक वर्ण या जाति के व्यक्ति को शुद्ध माना है। यथा—

शूद्रोऽप्युपस्कराचारवपुःशुद्धश्चास्तु तादृशः ।

जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धो ह्यात्मास्ति धर्मभाक् ॥

—सागारधर्मामृत २-२२

अर्थात्—कोई शूद्र भी है, यदि उसका आसन, वस्त्र, आचार और शरीर शुद्ध है तो वह ब्राह्मणादि के समान है। तथा जाति से होन (नीच) होकर भी कालादि-लब्धि पाकर वह धर्मात्मा हो जाता है।

यह कितना स्पष्ट एवं उदारतामय कथन है ! एक महा शूद्र एवं नीच जाति का व्यक्ति अपने आचार विचार एवं रहन-सहन को पवित्र करके ब्राह्मण के समान बन जाता है। ऐसी उदारता और कहाँ मिलेगी ? जैन धर्म गुणों की उपासना करना बतलाता है, उसे जन्मजान शरीर की कोई चिन्ता नहीं है। यथा—

“व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥”

- रविपेणाचार्य

अर्थात्—चाण्डाल भी व्रत धारण करके ब्राह्मण हो सकता है।

इतनी महान उदारता और कहाँ हो सकती है ? इसी बात की पुष्टि में एक कवि ने लिखा है:—

जहाँ यर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर ।  
 तर जाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अन्नन चोर ॥  
 जहाँ जाति का गंध न होवे और न हो थोथा अमिमान ।  
 यही धर्म है, मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान ॥

मनुष्य जाति को एक मान कर प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार देना ही धर्म की उदारता है । जो लोग मनुष्यों में भेद दखते हैं उनके लिये आचार्य लिखते हैं—

“नास्ति जातिकृतो भेदो मनुष्याणां गराश्ववत् ।”

शुद्धभद्राचार्य

अर्थात्—जैसा पशुओं में या तियों में गाय और घोड़े आदि का भेद होता है वैसा मनुष्यों में कोई जातिवृत्त भेद नहीं है । कारण कि ‘मनुष्यजातिरेकैव’ मनुष्य जाति तो एक ही है । फिर भी जो लोग इन आचार्य वाक्यों की अवहेलना करके मनुष्यों को सैकड़ों नहीं हजारों जातियों में विभक्त करके उन्हें नीच ऊँच मान रहे हैं उन्हें क्या कहा जाय ?

स्मरण रहे कि भाग्य के साथ ही जमाना भी यह चलता रहा है कि मनुष्य मात्र से सधुत्य का माता जोड़ो उनसे प्रेम करा और कुमार्ग पर जाते हुये लोगों को समान यत्नाओं तथा उन्हें शुद्ध करने अपने हृदय से लगाओ । यही मनुष्य का कर्त्तव्य जीवन का उत्तम कार्य और धर्म का प्रधान अंग है । भला मनुष्यों के उद्धार के समान और दूसरा धर्म क्या हो सकता है ? जो मनुष्यों से घृणा करता है उसने न तो धर्म को पहिचाना है और न मनुष्यता को ।

वास्तव में जैन धर्म इतना उदार है कि, जिसे कहीं भी शरण न मिले उसके लिये भी उसका द्वार सदा खुला रहता है। जब कोई मनुष्य दुराचारी होने से जाति-बहिष्कृत और पतित किया जा सकता है तथा अधर्मात्मा करार दिया सकता है तब यह भी स्वयं सिद्ध है कि वही अथवा अन्य व्यक्ति सदाचारी होने से पुनः जाति में स्थापित हो सकता है, पावन हो सकता है और धर्मात्मा बन सकता है। आश्चर्य है कि इतनी सीधी सादी एवं युक्तिसंगत बात क्यों समझ में नहीं आती ?

यदि भगवान् महावीर की उदार दृष्टि न होती तो वे महापापी, अत्याचारी मांसलोलुपी, नरहत्या करने वाले, निर्दयी मनुष्यों को इस पतितपावन जैनधर्म की शरण में कैसे आने देते ? और उन्हें उपदेश ही क्यों देते ? उनका हृदय विशाल था, वे सच्चे पतितपावन प्रभु थे, उनमें विश्वप्रेम था, इसीलिये वे अपने शासन में सबको शरण देते थे। समझ में नहीं आता कि भगवान् महावीर के अनुयायी आज उसी प्रकार की उदारबुद्धि से क्यों काम नहीं लेने ?

भगवान् महावीर का उपदेश प्रायः 'प्राकृत' भाषा में होता था। इसका कारण यही है कि उस जमाने में निम्न से निम्न वर्ग की आम भाषा 'प्राकृत' थी। उन सबको उपदेश देने के लिये ही साधारण बोलचाल की भाषा में हमारे धर्मग्रन्थों की रचना हुई थी।

जो पतितपावन नहीं है वह धर्म नहीं है, जिसका उपदेश शरीर मात्र के लिये नहीं है वह देव नहीं है, जिसका

कथम सरने लिये नहीं है यह शास्त्र नहीं है । जो भीषों से घृणा करता है और उन्हें कल्याणमाग पर नहीं लगा सकता यह गुरु नहीं है । जैष्ठम में यह उदारता पाई जाती है इसलिए यह श्रेष्ठ है । जनश्रम की इस उदारता की आज मूर्त रूप देने की आवश्यकता है ।



## उदारता के उदाहरण

जैष्ठम में वर्णों की विशेषता यह है कि उत्तम जाति या वर्ण की ओर ग श्रमों का महत्त्व दिया गया है । यही कारण है कि वर्ण की व्यवस्था ज म से म मानकर कम से मानी गई है । यथा —

मनु यथातिरेक्य जातिनामोदयोद्धवा ।

वृत्तिमेदाहितदुमेदाधातुविष्पमिहारनुत ॥४५॥

माद्यना व्रतमस्कारात् क्षत्रिया शस्त्रधारणान् ।

वाणिज्याऽपार्जनान्प्राणान् शूद्रा नगृह्णन्मध्यान् ॥४६॥

—आदिपुराण पद्य ३=

अर्थात्—जाति नामकर्म के उद्देश्य से उत्तम वर्णों में मनुष्य आति पर ही है किन्तु क्षत्रिया के भेष से यह चार वर्णों (वर्णों) में विभक्त हो गई है । वर्णों के सरकार से माह्वय, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय न्यायपूर्ण द्रव्य बनाने से वैश्य और नीच वृत्ति का भाव्य देने से शूद्र बने जाते हैं ।



क्षत्रियाः क्षततस्त्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः ।

शूद्राः शिल्पादिसंबंधाज्जाता वर्णास्त्रियोऽप्यतः ॥३६॥

—हरिवंशपुराण, सर्ग ६

अर्थात् दुखियों की रक्षा करने वाले क्षत्रिय, व्यापार करने वाले वैश्य और शिल्पकला से सम्बन्ध रखने वाले शूद्र बनाये गये ।

इस प्रकार आजोविका—भेद से मानवों में भेद हो गया । न तो कोई ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से ही उच्च हो जाता है और न शूद्र कुल में जन्म लेने से नीच । जैन समाज के गण्यमान्य विद्वान् पं० पन्नालाल जी 'साहित्याचार्य' ने लिखा है : -

'कितने ही लोग सहसा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को उच्चगोत्री और शूद्र को नीचगोत्री कह देते हैं और फतवा दे देते हैं 'चूंकि शूद्र के नीचगोत्र का उदय रहता है अतः वह सकल व्रत ग्रहण नहीं कर सकता । आगम में नीचगोत्र का उदय पंचम गुणस्थान तक बतलाया है और सकल व्रत षष्ठम गुणस्थान के पहले नहीं हो सकता ।' परन्तु इस युग में जबकि सभी वर्णों में, वृत्ति-कर हो रहा है तब क्या कोई विद्वान् दृढ़ता के साथ यह कहने को तैयार है कि अमुक वर्ग अमुक वर्ण का है ? जिन बङ्गाली और काश्मीरी ब्राह्मणों में एक दो नहीं, पचासों पीढ़ियों से मांस-मज्जली खाने की प्रवृत्ति चल रही है उन्हें ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण उच्च गोत्री माना जाय और बुन्देलखण्ड की जिन बड़ई, गुहार, सुनार, नाई आदि जातियों में पचासों पीढ़ियों से मांस मदिग न खाने की प्रवृत्ति नहीं मिली है उनसे शूद्र वर्ण में

उत्पन्न होने से नीच गो ॥ कहा जाय, यह कुछ बेतुकी सी बात लगती है। जिन लोगों में रस का करा घरा होता हो वे धृष्ट हैं—नीच हैं और जिनमें यह बात न हो वे विषण्विज हैं—उच्च हैं। यह बात भी आज जमता नहीं है क्योंकि स्पष्ट नहीं तो शुद्ध रूप में यह बरे घर का प्रभु से विषण्वी छिर्वा में भी हजारों वर्ष पहले से चली आ रही है और अब तो ब्राह्मण भी लुप्त हो गये, तथा कोई कोई जीत भी स्पष्ट रूप में करा-घरा विषया विषाद करने लगे हैं। इन सबका क्या कहा जायगा? मरा तो गया है कि आचरण का शुद्धता और अशुद्धता के आधार पर सभी वर्णों में उच्च नीच गोन का व्यवहार रह सकता है और सभी वर्ण वाले उसका आधार पर दृश्यमान तथा गन्तव्य मन प्रत्यक्ष कर सकते हैं।”

[ भारतीय छानपोठ वाशा ॥ प्रकाशित भगवद्गीतासेनाचार्य दत्त महापुराण आदिपुराण की विद्वत् पूज्य प्रकाशना (पृष्ठ ६१) से ]

जीनधर्म में वर्ण-विभाग करके भी गुणों का प्रतिष्ठा का गई है और जाति या वर्ण का भेद करने वालों की निंदा की गई है। तथा उन्हें दुर्गति का पागल बना दिया है। आराधना क्या कोश में लक्ष्मीयता का क्या है। उन प्रपन्ना ब्राह्मण जाति का बहुत अभिमान था। इसी से वह दुर्गति का प्राप्त हुए। प्रत्यक्ष उद्देश्य होते हुए लिखत है—

मानतो ब्राह्मणी गता ब्रमादीवरदेशना ।

जातिगर्वान् कर्तव्यवर्तनं पृथाप्य जपने ॥४४-१६॥

अर्थात्—जाति गर्व का कारण एक ब्राह्मणी से दोमर को लड़की हुए, इसलिये सुमानों का जन्म का गया गरी

करना चाहिये ।

इधर तो जाति का गर्व न करने का उपदेश देकर मानवता का पाठ पढ़ाया है और उधर जाति-गर्व के कारण पतित होकर ढीमर के यहाँ उत्पन्न होने वाली लड़की का आदर्श उद्धार बताकर जैनधर्म की उदारता को और भी स्पष्ट कर दिया गया है । यथा—

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितम् ।

धर्ममाकर्ण्य जैनेद्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥२४॥

संजाता जुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः ।

मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥२५॥

—आराधना कथाकोश ४५

अर्थात्—समाधिगुप्त मुनिराज के मुख से जैनधर्म का उपदेश सुनकर वह ढीमर (मच्छीमार) की लड़की जुल्लिका हो गई और शान्तिपूर्वक तप करके स्वर्ग गई ।

इस प्रकार एक गृध्र ( ढीमर ) की कन्या मुनिराज का उपदेश सुनकर जैनियों की जुल्लिका-साखी हो जाती है । क्या वह जैनधर्म की कम उदारता है ? ऐसे उदारतापूर्ण अनेक उदाहरण इस पुस्तक के अनेक प्रकरणों में लिखे जा चुके हैं । कुछ ऐसी ही जैन कथाओं का सारांश उदाहरण के रूप में यहां और उपस्थित किया जा रहा है ।

१-अग्निभूत—मुनि ने चाण्डाल की अंधी लड़की को आचारा के धन धान्य दयाएँ । वहीं तीसरे भव में मुकुमाल हुई ।

२-पूर्णमद्र—और मानमद्र नामक दो वैश्य पुत्रों ने एक चाण्डाल को धावक के मत ग्रहण कराये । जिससे वह चाण्डाल मरकर सोलहवें स्थान में श्रद्धिधारी द्वय हुआ ।

३-स्लेच्छ कन्या—जरा से भगवान नेमिनाथ के वाचा प्रसुद्ध ने विवाह किया, जिससे जरतुमार उत्पन्न हुआ । उसने मुनिदीक्षा ग्रहण की ।

४—महाराजा श्रेणिक—बाण थे तब शिकार खेलते थे और घोर हिसा करत थे मगर जब वे जैन हुये तो वे शिकार आदि का त्याग कर जैनियों के महापुरुष हो गये ।

५-विद्युत् चोर—चोरों का सरदार होने पर भी जम्बू स्वामी के साथ मुनि हो गया और तप करके सचार्यसिद्धि को गया ।

६-पापी मृगधन—मैंनों तब का मांस खा जाता था किन्तु पही मुनिदत्त मुनि के पास जिनदीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों का नाश कर जैनियों का परमात्मा (सिद्ध भगवान) बन गया । पद्याः—

मुनिदत्तमुनेः पाण्व जैनी दीदा ममाश्रितः ।

स्य नात्वा मुनाध्यानान् पातिकर्मचतुष्टयम् ।

केवलब्रानमुत्पाय मजातो सुवनाचित् ॥

—आराधना कथा ५५

७-परस्त्रीमेरी का मुनिदान—राजा सुमुखवारह छेड़ को पत्नी धनमाला पर मुग्ध हो गया । उसे दूतियों के द्वारा

अपने महल में बुला लिया और फिर उसे घर नहीं जाने दिया। यहाँ तक कि उसे अपनी स्त्री बना कर उससे प्रगाढ़ काम सेवन करने लगा। एक दिन राजा सुमुख के मकान पर महामुनि पधारे। वे सब कुछ जानने वाले विशुद्धहानी के फिर भी उन्होंने राजा के यहाँ आहार लिया। राजा सुमुख और वनमाला दोनों ने मिलकर मुनिराज को आहार दिया और पुण्य-संचय किया। इसके बाद भी वे दोनों काम सेवन करते रहे। एक समय विजली गिरने से वे मरकर विद्याधर विद्याधरी हुए। इन्हीं दोनों से 'हरि' नामक पुत्र का जन्म हुआ, जिससे हरिवंश की उत्पत्ति हुई।

[—हरिवंश पुराण सर्ग १४ श्लोक ४७ से सर्ग १५ श्लोक १३ तक]

कहाँ तो यह उदारता कि वभिचारी लोग भी मुनि को दान देकर पुण्य संचय कर सकें और कहाँ आज तनिक से लांछन से पतित किया हुआ जैन जातिच्युत होकर जिनेन्द्र भगवान के दर्शनों को भी तरसता रहे।

८—वेश्या और वेश्यासेवी का उद्धार—हरिवंश पुराण के सर्ग २१ में चारुदत्त और वसन्तसेना का बहुत ही उदारतापूर्ण जीवनचरित्र है। उसका कुछ सार माग यहाँ दिया जाता है। चारुदत्त ने बाल्यावस्था में ही अणुव्रत ले लिये थे (२१-१२), फिर भी चारुदत्त अपने काला के साथ वसन्तसेना के यहाँ माता की प्रेरणा से पहुँचाया गया (२१-४०), वसन्तसेना नेश्या की माता ने चारुदत्त के हाथ में अपनी पुत्री का हाथ पकड़ा दिया (२१-५८) फिर वे दोनों मजे से संभोग-रत रहे। अन्त में वसन्तसेना की माता ने चारुदत्त को घर से

आदर निकाल दिया (२१-७३) चारुदत्त व्यापार करने चले गये ।  
 फिर वापिस आकर घर में आनन्द से रहने लगे । वसन्तसेना  
 ने भी अपना घर छोड़कर चारुदत्त के साथ रहने लगी ।  
 उसने एक भार्यिका के पास आविका के मत ग्रहण किये इस  
 लिये चारुदत्त ने भी उसे सदा अपना लिया और उसे पत्ना  
 बनाकर रखा ( २१-१७६ ) बाद में वेश्यासेयी चारुदत्त मुनि  
 होकर सर्वापसिद्धि गए और उस वेश्या को भी सद्गति  
 प्राप्त हुई ।

इस प्रकार एक वेश्यासेयी और वेश्या का भी जहाँ उद्धार  
 हो सकता हो उस धर्म की उदारता का फिर क्या पूछना ।  
 आश्चर्य है कि चारुदत्त ने उस वेश्या को प्रेम सहित  
 अपना कर अपने घर पर रख लिया और समाज ने कोई  
 विरोध नहीं किया । मगर आजकल स्वार्थी लोग ऐसे पतितों  
 को एक तो पुनः समाज में मिलाते नहीं और यदि मिलाते भी  
 हैं तो केवल पुरुष को । और बेचारी स्त्री को धनाधिनी मिला  
 रणी और पतिता बनाकर सदा के लिये जाति धर्म तथा समाज  
 से निकाल देते हैं । एक से अपराध में पुरुष को जाति में मिला लेना  
 और स्त्री को सदा के लिये पतिता बनाये रखना और अन्याय  
 और निन्द्यता है ।

६-व्यभिचारिणी की सन्तान—हरिश्चन्द्र पुराण के सर्ग  
 २६ की एक कथा बहुत ही उदार है । उसका भाष्य है—  
 तपस्विनी ऋषिदत्ता के शाश्वत में आकर राजा शुक्राश्रुत ने  
 एकान्त पाकर उससे व्यभिचार किया ( ३६ ) उसके गर्भ से  
 ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ । वसन्त-सोदा से ऋषिदत्ता मर गई और

सम्यक्त के प्रभाव से नागकुमारी हुई। व्यभिचारी राजा शीलायुध दिगम्बर मुनि होकर स्वर्ग गया (५७)।

प्रेमीपुत्र की कन्या प्रियंगुसुन्दरी को एकान्त में पाकर वसुदेव ने उसके साथ काम-क्रीड़ा की ६८ और उसे व्यभिचार जात जानकर भी अपनाया और संभोग करने के बाद उसके सामने प्रकट विवाह किया (७)।

१०-मांसभक्षी की मुनिदीक्षा—सुवर्मा राजा को मांस भक्षण का शौक था। एक दिन वह मुनि चित्ररथ के उपदेश से मांस त्याग कर तीन सौ राजाओं के साथ मुनि हो गया (हरि० ३३-१५२)।

११-कुमारी कन्या की सन्तान—राजा पाण्डु ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही संभोग किया जिससे कण उत्पन्न हुआ।

“पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कणः कन्याप्रसंगतः” ।

— हरि० ४५-३७

और फिर बाद में उसी से विवाह हुआ, जिससे युधिष्ठिर अर्जुन और भीम उत्पन्न होकर मोक्ष गये।

१२-चाण्डाल का उद्धार—एक चाण्डाल जैन धर्म का उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया और दीनता का छोड़ कर चारों प्रकार के आहारों का परित्याग करके व्रती हो गया। वही मरकर नन्दीश्वर द्वीप में देव हुआ—

निर्वेदी दीनतां त्यक्त्वा त्यक्त्वाहागचतुर्विधं ।

मानेन शपचां मृत्वा भूत्वा नन्दीश्वराऽमरः ॥

—हरि० ४३-१५५

२००१

इस प्रकार चाण्डाल अपना दोनना को (कि मैं नीच) निकुकर बना बन जाता है और दूध होता है।

१३-शिकारी मुनि हावाश-जंगल में शिकार खेलता हुआ और मृग का घेर करके प्रायः हुआ एक रात मुनिराज के उपदेश से दूध मरे हाथों को धाकर तुरन्त मुनि हो जाता है।

१४-भीन के धारक बन महाभारत कृष्ण का जीव नर मोल या तुरन्त मुनिराज के उपदेश से उन धारक के धार से लिये और वह प्रमथ विशुद्ध हावा हुआ महाभारत कृष्ण को पयाय में छाया।

इन थोड़े से उदाहरणों से ही जैनधर्म की उदारता का बहुत कुछ ध्यान हो सकता है।

## श्वे० जन शास्त्रों में उदात्ता के प्रमाण

श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में जैनधर्म की उदारता के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। उनसे स्पष्ट होता है कि जैनधर्म वास्तव में मानव मानव का धर्म धारण करने की आज्ञा देता है। नीच पापी और अपराधियों का शुद्धि का भी उपाय बतलाता है और स्वकी शरण देता है। श्वेताम्बर जैन शास्त्रों से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं -

(१) मेघनाथ मुनि चाण्डाल थे। अन्त में वे मुनि-दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

(२) हरिदत्त अन्ध से मच्छीमार था। अन्त में वह मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष गया।



(३) अर्जुन माली ने ६ माह तक १-स्त्री और ६ पुत्रों की हत्या की, अन्त में भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में उस हत्यारे को शरण मिली। वहाँ उसने मुनिदीक्षा लेली और तपस्या द्वारा कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष गया।

(४) आदिमखाँ मुसलमान जैन था। उसके बनाये हुये भजन आज भी भक्तिभाव से गाये जाते हैं।

(५) दुर्गधा वेश्या की पुत्री थी। वही राजा श्रेणिक की पत्नी बनी। (त्रिषष्टि०)

(६) ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का जीव पूर्व भव में चारुण्ड था उसे एक मुनि ने उपदेश देकर मुनिदीक्षा दी। वह मुनि होकर द्वादशोंग का ज्ञाता हुआ। (त्रिषष्टि०)

(७) कयवन्ना ( कृतपुण्य ) सेठ ने वेश्यापुत्री से विवाह किया। फिर भी उनके धर्मसाधन में कोई बाधा नहीं आई।

(८) चिलाती पुत्र ने एक कन्या का मस्तक काट डाला। वह चोर, दुराचारी और हत्यारा था फिर भी उसे मुनिदीक्षा दी गई। (योगशास्त्र)

(९) मथुरा में जितशत्रु राजा और काला नाम की वेश्या के संयोग से कालवेशीकुमार हुआ। इस प्रकार व्यभिचारोत्पन्न वेश्यापुत्र कालवेशीकुमार ने मुनिदीक्षा ले ली।

[ 'मथुरा कल्प' जिनप्रगखरिक्त और मुनि न्यायविजयजीकृत टीका ]

(१०) चारुण्ड की पुत्री हम्किश्री बल ने मुनिदीक्षा ली उनकी पूजा ऋषि, ब्राह्मण, राजा और देवों ने भी की।

(उत्तराख्ययन सूत्र)

(१८) मथुरा में कुवेरसेना वेश्या से कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता नामक पुत्र पुत्री हुये । दैवयोग से दोनों का विवाह हुआ । कुवेरदत्ता ने दीक्षा ले ली । उधर कुवेरदत्त ने अपनी माँ को पत्नी बना लिया । और निमित्त मिलने पर वह भी मुनि हो गया । वेश्या कुवेरसेना ने भी जैनधर्म स्वीकार किया ।  
(मथुरा कल्प)

(१९) मथुरा में जिनदास ने अपने दो पैलों को मरते समय समोकार माँ दिया और उन पैलों ने आहार पानी का त्याग कर दिया । जितसे वे मर कर नागकुमार हुए ।  
(मथुरा कल्प)

(२०) पुष्पचूल और पुष्पचूला दोनों भाई रहिन थे । दोनों ने आपस में विवाह कर लिया । इस प्रकार वे व्यभिचारी बने । फिर भी पुष्पचूला ने दीक्षा ले ली और जलने कम-बचन काट डाले ।  
(मथुरा कल्प)

(२१) यस्तुपाल तेजपाल प्राग्घाट जातीय अक्षराज की पत्नी कुमारदेया के पुत्र थे । कुमारदेया अश्रद्धितपट्टन की विधवा थी । अक्षराज ने उससे पुनर्विवाह किया । इस प्रकार यस्तुपाल तेजपाल विधवा के पुत्र थे । इतने पर भी यस्तुपाल (प्राग्घाट जाति) ने विज्ञानाय (मोढ जाति में) विवाह किया । फिर भी उनका सन् १३० में गिरनार का सद्य निवाला । उसमें १२ हजार श्वेताक्षर और १०० दिग्भर जैन साथ थे । उसके बाद सन् १२१० में उन्होंने आपू के जगदिश्यास जैन मंदिर बनवाये ।

(२२) जाति के विषय में स्पष्ट कहा है कि प्राग्घाट,

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि का व्यवहार कर्मगत (आचरण से) है । ब्राह्मणत्वादि जन्मगत नहीं होते । यथा—

कम्मुणा वम्मणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो ।

वइसो कम्मुणा होई, सुदो हवइ कम्मुणा ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ० २५)

(१६) जैनधर्म में जाति को प्रधान नहीं माना है । इसी विषय में मुनि श्री 'सन्तवाल्' जी ने उत्तराध्ययन की टीका में १२ वें अध्याय के प्रारम्भ में विवेचन करते हुये लिखा है:—

“आत्मविकास में जाति-बन्धन नहीं होते । चाण्डाल भी आत्म-कल्याण के मार्ग पर चल सकता है । चाण्डाल जाति में उत्पन्न होने वाले का भी हृदय पवित्र हो सकता है । हरिकेश मुनि चाण्डाल कुलोत्पन्न होकर भी गुणों के भंडार थे । नरेन्द्र देवेन्द्र और महापुरुषों ने उनकी वन्दना की थी । वर्णव्यवस्था कर्मानुसार होती है । उसमें नीच ऊँच के भेदों को स्थान नहीं है । भगवान् महावीर ने जातिवाद का खंडन करके गुणवाद का प्रसार किया था । अभेद भाव का अमृत पान कराया और दीन हीन पतित जीवों का उद्धार किया था ।

प्रत्यक्ष में जानिगत कोई विशेषता मालूम नहीं होती, प्रत्युत विशेषता दिखाई देता है तप में । चाण्डाल का पुत्र हरिकेशी तप से ही श्रद्धाभूत पेशवर्ष और ऋद्धि को प्राप्त हुआ यथा: -

ममस सु दीमः तरो विमो, न दीमः नाविसेम काई ।  
 गोवागपुच हरिणममाहु, चम्मेरिना गृहि महाशुभागा ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ० १९)

(१७) मयुरा के यमुन राजा ने श्वानमन दण्ड मुनिराज का तलवार से घात किया । बाद में उस मुनि घातकी राजा न मुनिदीक्षा ले ली ।

(१८) मयुरा के राजा जितशत्रु की पेशा पत्नी थी उसका नाम काला था । उस पेशा से कालपेशाकुमार हुआ । और उस पेशापुत्र न युवाचर्या में मुनि दीक्षा ग्रहण की ।

(उत्तराध्ययन सूत्र अ० २ सू० ३)

(१९) व्याजायक सम्प्रदाय के अनुयायी कुम्हार महालपुत्र को स्वयं भगवान महावीर स्वामी ने आश्व के १० व्रत दिये और उसको छो अग्निमित्रा भी जैनधर्म में दीक्षित हुई ।

(उपासगदर्शन अ० ६)

(२०) कुम्हार स्वामी के समय में एक ईरानी राजकुमार समयकुमार के समय से जैनधर्म का श्रद्धालु हुआ था । आश्वि नामक राजकुमार ने महावीर स्वामी के शयन में अग्निमित्रा लेकर मुनि दीक्षा ली और यह मोग गया ।

(सुबहर्तांग)

(२१) अश्वरुहमान पूतपाल नामक एक मुत्तमान, राजकुटिया देवती के थे । उन्होंने सम्वत् १६१० के पूष जैनधर्म की शरण ली थी ।

(२२) कुछ ही वर्ष पूर्व इन्द्रताम्ररायाय श्री० रिजयेन्द्र शर्मा ने जैन महिला मित्र चारहोंटा काज को जैनधर्म की

दीक्षा दी थी और उनका नाम 'सुभद्राकुमारी' रखा था । अभी भी वे जैनधर्म का पालन करती हैं और ग्वालियर स्टेट में शिक्षा विभाग के उच्च पद पर कार्य करती रहीं । वे जैनमन्दिरों में दर्शन पूजन करती हैं, और जेनों को उनके साथ खान पान आदि करने में अब कोई परहेज नहीं है ।

(२३) श्वेताम्बराचार्य नेमिसूरि जी महाराज ने वर्तमान में कई शूद्रों को मुनि-दीक्षा दी है । श्वे० में अनेक साधु शूद्र जाति के अभी भी विद्यमान हैं ।

(२४) श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास ( गुजरात ) के द्वारा अभी भी जैनधर्म का प्रचार हो रहा है । वहाँ हजारों पाटोदार स्त्री पुरुषों को जैनधर्म की दीक्षा दी गई है । वे सब वहाँ के जैन मादरों में भक्ति-भाव से पूजा, स्वाध्याय और आत्मध्यान आदि करते हैं ।

(२५) आध्यात्मिक संत पुरुष श्री कानजी स्वामी पहले प्रख्यात श्वेताम्बराचार्य थे । अब वे दिगम्बरास्नाय के सुदृढ़ श्रद्धानी हैं । उनके उपदेश से विविध जातियों के कई हजार नर-नारियों ने जैनधर्म धारण किया है । सोनगढ़ ( सौराष्ट्र ) में जैनधर्म का उपदेश प्राप्त करने के लिये अभी भी सहस्रों नर-नारी जाते हैं और वहाँ किसी भी प्रकार के जातिगत भेद भाव के बिना, सभी लोग श्री कानजी स्वामी के प्रवचन सुनते, और जिन मन्दिर में धर्माराधन करते हैं ।

इस प्रकार श्वेताम्बर शास्त्रों में और उनके व्यवहार में जैनधर्म को उदात्ता के अनेक प्रमाण मिलते हैं । मात्र इन दाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म परम उदार है ।

आत्मण, धर्मिण, वैश्य और शूद्र तो क्या चारणाल भट्टत  
विदेशो अनेक, मुनितमान् आनि श्री जनधर्म धारण करके  
स्वपर कल्याण कर सकने हैं। धर्म के लिए जाति का विचार  
नहीं है। उसके लिए आत्मगुण की ही आवश्यकता है।  
एक जैनाचार्य ने क्या ही अच्छा कहा है:

महु धम्म जो प्रायर, उमण मुदवि कोड ।

मो मावहु, कि मायह अण्ण कि मिमि मणि होइ ॥

—श्री वपसेनाचार्य

अर्थात् इस जनधर्म का जो भी आचरण करना है वह  
चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, या कोई भी हो यही धायक  
( जैन ) है। क्योंकि धायक के लिए पर कोई मणि तो लगा  
नहीं रहता।

कितना अच्छी उदारता है? जैना सुन्दर और स्पष्ट  
कथन है? जैसी दक्षिणा उक्ति है? इस प्रकार मैं जो व्यक्तिगरी  
अनाधारी नर-नारियों के उदाहरण दिये गये हैं, उनसे केवल  
यही शिक्षा ग्रहण करना है, कि अनाधारी व्यक्ति भी जनधर्म  
धारण करके आत्मकल्याण कर सकने हैं।

## जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार

इस पुस्तक में सभी तरह के अनेक उदाहरण दिये जा  
चुके हैं जिनसे ज्ञात होता है कि घोर से घोर पापा, मोक्ष से  
मोक्ष आकाश वाले भी चारणालादिक दान दान शूद्र भी  
जनधर्म की शरण लेकर पापों का नाश कर सकते हैं। जैनधर्म में सब  
को बचाने की शक्ति है। जहाँ यण की प्रेरणा सदाचार को

विशेष महत्व दिया गया है वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादिक का पक्षपात कैसे हो सकता है ? इसीलिए कहना न होगा कि जैनधर्म में शूद्रों को भी वही अधिकार हैं जो ब्राह्मणादि को हो सकते हैं। शूद्र जिनमन्दिर में जा सकते हैं, जिनपूजा कर सकते हैं जिनचिम्ब का स्पर्श कर सकते हैं, उत्कृष्ट श्रावक तथा मुनि के व्रत ले सकते हैं। नीचे लिखी कुछ कथाओं से यह बात विशेषरूप से स्पष्ट हो जानी है। इन बातों से व्यर्थ ही न भड़क कर इन शास्त्रीय प्रमाणों पर विचार कीजिये।

(१) श्रेणिक चरित्र में तीन शूद्र कन्याओं का विस्तार से वर्णन है। उनके घर में मुर्गियाँ पाली जाती थीं। वे तीनों नीच कुल में उत्पन्न हुई थीं। उनका रहन सहन आदि बहुत ही खराब था। एक बार वे मुनिराज के पास पहुँची और उनके उपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने उद्धार का मार्ग पूछा। मुनिराज ने उन्हें 'लब्धिविधान व्रत' करने को कहा। इस व्रत में भगवान् त्रिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का प्रक्षाल-पूजादि, मुनि और श्रावकों को दान तथा अनेक धार्मिक विधियाँ (उपवासादि) करनी होती है। उन कन्याओं ने यह सब शुद्ध अन्तःकरण से स्वीकार किया। यथा -

तिसोपि तद्व्रतं चक्रुस्त्यापनक्रियायुतम् ।

मुनिराजोपदेशेन श्रावकाणां यदायतः ॥७॥

श्रावकव्रतमयुक्ता अभ्युत्तानाश्च कन्यकाः ।

चमादिद्वतसंकीर्णाः शीलगतपरिभूषिताः ॥८॥

किपत्काले गते कन्या आमात्य निनमदिरम् ।  
मर्या मइता चक्रमनायापगुद्धिन ॥ ५६ ॥  
तत आयुचये कन्या कृत्वा मना रचनाम् ।  
अर्द्धीनावर स्मृता गुह्यतद ण य ॥ ५७ ॥  
पचमे दिवि सनाता मदादवा स्फुट्यता ।  
सद्विवा रमणीलिंग मान य रनाविवा ॥ ५८ ॥

—गोनमचरित्य भासरा अधिकार

अर्थात्—उन तीनों शुद्ध व याश्यों में मुनिराज के उपदेशों  
नुसार धायकों की सहायता से उद्यापन क्रिया मंदिन मन्त्रविधान  
मत किया तथा उन कन्याओं ने धायकों के जो धारण करके  
समाधि दण धर्म और शासन धारण किया । कु ३ मन्त्र बाद  
उन शुद्ध कन्याओं में जैन मन्दिर में जाकर मन गवन बाप का  
गुह्यतदूर्पण जिनेद्र भगवान का पढ़ा पूजा की । फिर आयु  
पूर्ण होने पर ये कन्याएँ समधिपमरण धारण करके अह न हव  
के पीडासतों को स्मरण करता हुई और मुनिराज व व यत्नों का  
नमस्कार करके ग्रीष्मयोग शुद्ध कर पावप र्ण में दण हुई ।

इस कथामाग से जैनधर्म की उद्गमना अधिक स्पष्ट हो  
जाती है । जहाँ भास के द्वारा जो लोग इस माग की पूजा करता  
का अनधिकार्य वतलाते हैं वहाँ मुर्गी मुर्गियों का पालन पला  
शुद्ध जाति की कन्याएँ जिनमन्दिर में जाकर मन्त्रपूजा करता हैं  
और अपना भव सुधार कर दण हो जाता है । शुद्धों की  
कन्याओं का समाधिपमरण धारण करना राजादरा का जाप



करना आदि भी जेनधर्म की उदारता को उद्घोषित करता है। (२)  
 इसके अनिरिक्त एक ग्वाला के द्वारा जिनपूजा का विधान है।  
 बताने वाली (११३ वीं) कथा भी आराधना कथाकोश में है।  
 उसका सार यह है —

२) धनदत्त नामक एक ग्वाला को गायें चराते समय  
 एक तालाब में सुन्दर कमल मिल गया। ग्वाला ने जिनमन्दिर  
 में जाकर राजा के द्वारा सुगुप्त मुनि से पूछा कि 'सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति  
 को यह कमल चढ़ाना है। आप बताइये कि संसार में सर्वश्रेष्ठ  
 कौन है?' मुनिराज ने जिनेन्द्र भगवान को सर्वश्रेष्ठ बतलाया।  
 तदनुसार धनदत्त ग्वाला, राजा और नागरिकों के साथ जिन  
 मन्दिर में गया और उसने वह कमल जिनेन्द्र भगवान की  
 मूर्ति (चरणों पर अपने हाथों से भक्तिपूर्वक चढ़ा दिया। यथा —

तदा गोपालकः सोऽपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः ।

भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्म गृहाणोदमिति स्फुटम् ॥१५॥

उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जौ परिक्षिप्त्वा सुपंकजम् ।

गतौ मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म शर्मदम् ॥१६॥

इस प्रकार एक गृध्र ग्वाला के द्वारा जिन-प्रतिमा के  
 चरणों पर कमल का चढ़ाया जाना गृध्रों के पूजाधिकार को  
 स्पष्ट सूचित करता है। ग्रन्थकार ने भी ऐसे मुग्धजनों के ऐसे  
 कार्य को सुखकारी बतलाया है ।

इसी प्रकार और भी अनेक कथायें शास्त्रों में भरी पड़ी  
 हैं, जिन में गृध्रों को वही अधिकार दिने गये हैं जो अन्य वर्गों  
 को हैं। यथा —

(३) सोमदत्त माली प्रतिदिन त्रिनेत्र मगधान को या करता था, और चम्पानगर का एक ग्याला मुनिराज से शोकार मन्त्र सीखकर स्वर्ग गया ।

(४) अनगसेना वेश्या अपने प्रेमी अनकीर्ति सठ के मुनि जाने पर स्वयं भी शीलिन हो गई और स्वयं गई ।

(५) एक डोमर (कहार) की पुत्री प्रियगुमना सम्पत्त्य रह थी । उसने एक साधु क वालरह का धर्मिया उद्गाही र फिर उसे भी जैन बनाया ।

(६) काणा नाम की डोमर की लड़की के लुझिका होन कया पहले ही लिख थाय है ।

(७) देविल कुमार ने एक धम्मशाला बनवाई । वह जैनधर्म भक्तानी था । उसने अपना उस धम्मशाला में दिगम्बर राज को ठहराया और पुण्य के मत्ताप से यह दब हुआ ।

(८) बामेक वेश्या जैनधर्म की परम उपासिका थी । ने जिन-भयन को दान दिया था । उसमें शुद्ध ज्ञानि के मुनि ठहरते थे ।

(९) सेली ज्ञानि की एक महिला मानकम्मे जैनधर्म पर रखती थी । आर्थिक धोमति की वह वृद्धिप्या थी । उसने जिन मन्दिर भी बनवाया था ।

इन उदाहरणों से शूद्रों के अधिकारों का कुछ भास हा ता है । श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में तो स्पष्टतः जैसे भगवद्ग्य ज्ञाने वाले शूद्रों को भी दोषा देने का विधान है ।

(१०) बिच और समूनि नामक व्यापारकपुत्र जब कैद हो

के तिरस्कार से दुखी होकर आत्मघात करना चाहते थे तब उन्हें जैन दीक्षा सहायक हुई और जैनों ने उन्हें अपनाया ।

(११) हरिकेशी चाण्डाल भी जब वैदिकों के द्वारा तिरस्कृत हुआ तब उसने जैनधर्म की शरण ली और जैन दीक्षा लेकर असाधारण महात्मा बन गया ।

इस प्रकार जिस जैनधर्म ने वैदिकों के अत्याचारों से पीड़ित प्राणियों को शरण देकर पवित्र बनाया, उन्हें उच्च स्थान दिया और जाति-मद का मर्दन किया, वही पतित पावन जैनधर्म आज के स्वार्थी संकुचितदृष्टि एवं जातिमदमत्त लोगों के हाथों में आकर बदनाम हो रहा है ! खेद है कि हम प्रतिदिन शास्त्रों का स्वाध्याय करते हुए भी, उनकी कथाओं पर, उनके सिद्धान्तों पर और उनकी अन्तरंग भावना पर ध्यान नहीं देते ।

जैनाचार्यों ने प्रत्येक शूद्र की शुद्धि के लिए तीन बातें मुख्य बनाई हैं -

- १—मांस मदिरादि का त्याग करके शुद्ध आचारवान हो
- २—आसन वसन पवित्र हो ३ स्नानादि से शरीर शुद्ध हो ।

इसी को श्री सोमदेवाचार्य ने 'नीतिवाक्यामृत' में इस प्रकार कहा है—

“आचारानवचत्वं शुचिन्पम्कारः शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रं नपि देवद्विजातितपस्त्रिपरिक्रमैर्मु योग्यान ।”

इस प्रकार तीन तन्त्र की शुद्धियाँ होने पर शूद्र भी सा होने के योग्य हो जाता है । ये आशाधर जी ने लिखा है

जात्या हीनोऽपि कालादिलम्बो हात्मास्ति धर्मभाक् ।

अर्थात्—जाति से हीन या नीच होने पर भी कालादिक  
कर्म-समयानुकूलता मिलने पर वह जैनधर्म का अधिकारी  
हो जाता है।

श्री समन्तमद्राक्षाय के कथनानुसार तो सम्यग्दर्शि  
पाण्डित्य भी दृष्ट माना गया है पूज्य माना गया है और  
गणपरादि द्वारा प्रशस्तीय कहा गया है। यथा—

सुम्यग्दर्शनमम्पन्नमपि मातृगदेहजम् ।

देवा देवै विदुर्मस्मगूढांगारान्तरीजमम् ॥२८॥

—रत्नकरण्ड भाष्यभाषार ।

श्रौं की तो बात ही क्या जैनश्रौं में महा-श्लेष्मों  
तक को मुनि होने का अधिकार दिया गया है। जो मुनि हो  
सकता है, उसके फिर कौन से अधिकार शेष रह जाते हैं ?  
कर्मिसार प्रथ में श्लेष्म को भी मुनि होने का विधान इस  
प्रकार किया है—

तपो पठिवअगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छ अज्जेय ।

कम्मो अव्वर अव्वर वर वर होदि सत्त वा ॥१६३॥

अर्थ—प्रतिपाद्य स्थानों में से प्रथम आर्य अरह का  
अनुप्य मिथ्यादर्शि से शयमी हुआ, उसके उपर्य अन्य है।  
उसके बाद असक्यात लाङ्गमात्र बट् स्थान के ऊपर श्लेष्म-  
अरह का अनुप्य मिथ्यादर्शि से सकल सदमो (मुनि) हुआ  
उसका उपर्य स्थान है। उसके ऊपर श्लेष्म अरह का अनुप्य

देश संयत से सकल संयमी हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है ।  
उसके बाद आर्यखण्ड का मनुष्य देश-संयत से सकल संयमी  
हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है ।

लब्धिसार की इसी ६६३ वीं गाथा की संस्कृत टीका  
इस प्रकार है—

“म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति  
नाशकिनव्यं । दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां  
म्लेच्छराजाणां च स्वर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकमबंधानां संयम-  
प्रतिपत्तेरविरोधान् । अथवा चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य  
मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छस्य देवभावात् संयमसंभवात् । तथाजातीयकानां  
दीक्षाहंत्वे प्रतिपेक्षाभावात् ।”

अर्थात् कोई यों कह सकता है कि म्लेच्छ-भूमिज  
मनुष्य मुनि कैसे हो सकते हैं ? तो यह शंका ठीक नहीं है,  
क्योंकि-दिग्विजय के समय चक्रवर्ती के साथ आर्य खण्ड में  
आये हुये म्लेच्छ राजाओं की संयम की प्राप्ति में कोई विरोध  
नहीं हो सकता । इतना ही नहीं, वे म्लेच्छभूमि से आर्यखण्ड  
में आकर चक्रवर्ती आदि से वैवाहिक संबंध से संबंधित होकर  
भी मुनि बन सकते हैं । दूसरी बात यह है कि चक्रवर्ती के  
द्वारा दियाही गई म्लेच्छ-कन्या से उत्पन्न हुई संतान माता  
की अपेक्षा से म्लेच्छ कही जा सकती है, और उनके मुनि  
हाने में किसी भी प्रकार का कोई निषेध नहीं हो सकता ।

इसी बात को सिद्धान्तराज आजयधवल ग्रन्थ में भी  
लिखा है—

‘अथ एव बुद्धो तत्तथ सजमग्गहणममवोत्तिणा सक्किम्व ।  
 विस्सविजयपपटवक्कव्हिखवावारेण सह मज्जिमखण्डमागमाणं  
 किने द्दएयाणं तत्तथ चक्कव्हि नादिहि सह जादववाहियसबधान  
 चरमपडिक्खीए विरोहाभावादो । अहवा नत्तत्त्व यवाना चक्क  
 र्वाणिरिणीताना गमेषूत्पन्ना भातृपग्गपेक्षया स्वयमक्कमभूमिजा  
 इताहविस्सिता सत्तो न किंचिद्धि विविद्ध । तथाजातीययानां  
 दीक्षाहस्व प्रतिषेधामावादिति ।’

--अथचपल आरा की प्रति पृ० ८२७-२८

इन टीकाओं से दो बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है ।  
 एक तो भले लोग मुनि दीक्षा तक ले सकते हैं और दूसरे  
 भले कन्या से विवाह करने पर भी कोई धर्म कर्म की हानि  
 नहीं हो सकती, प्रायुक्त उस भले कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान  
 भी अपनी ही धर्मादि की अधिकारिणी होता है जिसकी कि  
 सन्तानीय कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान ।

अथचनसार की अवसेनावाच्य इन टीका में भी स्पष्ट  
 का जिन-वाक्छा लेने का स्पष्ट विधान है । यथा —

एवमु-विचिष्टरुप्पो जिनदीनाग्रदूणे योगी भवति । यथा-  
 दोष्य सङ्गहायवि ।’

और भी इसी प्रकार के अनेक कथन जैन शास्त्रों में  
 पाये जाते हैं जो जैनधर्म की उद्धारता के चोकर हैं । प्रत्येक  
 व्यक्ति को प्रत्येक वृथा में धर्म-सेवन करने का अधिकार  
 है । ‘हरियश्चपुराण’ के २६ वें सर्ग के श्लोक ११ न २२  
 तक का अथवा द्वावन्न पाठकों को हाथ हो सकता है कि  
 जैनधर्म ने कैसे कैसे असंख्य अर्थ समान व्यक्तियों को भी  
 जिन-मन्त्र में आकर धर्मसेवन का अधिकार दिया है । पर

कथन इस प्रकार है कि वसुदेव अपनी प्रियतमा मदनवेगा के साथ सिद्धकूट चैत्यालय की वंदना करने गये। वहाँ पर चित्र विचित्र वेषधारी लोगों को बैठा देखकर कुमार ने रानी मदनवेगा से उनकी जाति जानने के संबंध में पूछा। तब मदनवेगा ने कहा —

मैं इनमें से इन मातंग जाति के विद्याधरों का वर्णन करती हूँ। नील मेघ के समान श्याम नीलो माला धारण किये मातंगस्तम्भ के सहारे बैठे हुये ये मातंग जाति के विद्याधर हैं ॥१५॥ मुर्दों की हड्डियों के भूषणों से युक्त श्मशान के लपेटने से मिले श्मशान स्तम्भ के सहारे बैठे हुये वह श्मशान जाति के विद्याधर हैं ॥१६॥ वैडूर्य मणि के समान नीले नीले चमड़े की धारण किये पाण्डुर स्तम्भ के सहारे बैठे हुये पाण्डुक जाति के विद्याधर हैं ॥१७॥ काले काले मृगचर्मों को ओढ़े, काले चमड़े के वस्त्र और मालाओं की धारण किए हुए कालस्तम्भ का आश्रय लेकर बैठे हुये ये कालश्वपा जाति के विद्याधर हैं ॥१८॥

इससे सिद्ध होना है कि खण्ड मुंड को गले में डाले हुये, हड्डियों के आभूषण पहिने हुए और चमड़े के वस्त्र चढ़ाये हुए लोग भी सिद्धकूट जिन चैत्यालय के दर्शन करते थे। और वहाँ बैठकर उपासना करते थे।

हमें इन उदाहरणों से कुछ सीखना चाहिये और यिना किसी भेद भाव के सब को जैनधर्म की उपासना करने देना चाहिये।



## जैनधर्म में स्त्रियों के अधिकार

जैनधर्म की सबसे बड़ी उदारता यह है कि पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी समान धार्मिक अधिकार दिये गये हैं। इस प्रकार पुरुष पूजा प्रभाव कर सकता है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। यदि पुरुष धार्मिक के उच्च प्रवर्गों का पालन कर सकता है तो स्त्रियाँ भी उच्च आधिका हो सकती हैं। यदि पुरुष ऊँचे से उँचे छमप्रणों के पाठों को पढ़ सकते हैं तो स्त्रियाँ भी उही अधिकार हैं। यदि पुरुष मुनि हो सकते हैं तो स्त्रियाँ भी आधिका होकर पंच महाप्रण धारण कर सकती हैं।

धार्मिक अधिकारों का भाँति सामाजिक अधिकार भी स्त्रियों के लिये समान ही हैं। यह बात दूसरी है कि एतमान में वैदिक धर्म आदि के प्रभाव से जैनमार्ग अपने कर्त्तव्यों को और धर्म की आवाजों को भूल गई है। हिन्दू शास्त्रानुसार सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र ही होता है किन्तु पुत्रियों उसकी अधिकारिणी नहीं मानी जाती।

इस संबंध में श्रीमद्वज्रसूत्रसेनाधाय ने अपने आदिपुराण (पृष्ठ ३८) में स्पष्ट लिखा है -

“पुत्रश्च भविष्यामार्हा नम पुत्रैः समाप्यते” ॥१५४॥

अर्थात् पुत्रों का भाँति पुत्रियों भी सम्पत्ति को पार पार भाग की अधिकारिणी हैं।



इसी प्रकार जैन कानून के अनुसार स्त्रियों को, विधवाओं को या कन्याओं को पुरुष के समान ही सब प्रकार के अधिकार हैं।

( विशेष जानकारी के लिये विद्यावारिधि जैन दर्शन विचार वैरिस्टर चम्पतराय जैन कृत 'जैनलॉ' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। )

जैन शास्त्रों में स्त्री-सम्मान के भी अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। आजकल मूढ़ जन स्त्रियों को पैर की जूती या दासी समझते हैं, तब जैन राजा राजसभा में अपनी रानियों का उठ कर सम्मान करते थे और अपना अर्धासन उन्हें बैठने को देते थे। भगवान महावीर श्री माता महारानी प्रियकारिणी जब अपने स्वप्नों का फल पूछने महाराजा सिद्धार्थ के पास गई तब महाराजा ने अपनी धर्मपत्नी को आधा आसन दिया, महारानी ने वहाँ बैठकर अपने स्वप्नों का वर्णन किया। यथा—

“संप्राप्तार्द्धांगना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत् ॥”

—उत्तरपुराण।

इसी प्रकार महारानियों का राजसभाओं में जाने और वहाँ पर सम्मान प्राप्त करने के अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं। जब कि वैदिक ग्रन्थ स्त्रियों को धर्मग्रन्थों के अध्ययन करने का निषेध करते हुए लिखते हैं कि “स्त्रीशूद्रौ नाधीयानाम्” तब जैनग्रंथ स्त्रियों को ग्यारह अंग के पठन पाठन करने का अधिकार देते हैं। यथा—

द्वादशांगधरो जात सिद्ध मेधेश्वरो गनी ।

एकादशांगमृजावाऽऽर्थिकापि मुलाचना ॥५२॥

हरिपशुपुत्राण सर्ग १२ ।

मर्त्यात् अयङ्गुमार मगरान का द्वादशांगधारी गणधर  
[ ५२ ] और मुलाचना ग्यारह अंग की धारक आर्थिका हुई ।

इसी प्रकार स्थिया वि (नम्र-गै) के अङ्गों के पाप  
की जिनप्रतिमा का पूजा-आल भ्रा किया करता थी अज्ञान  
धुरी ने अपनी सखी यम-नमासा के साथ यम में रहने हुये  
धुरी में पिराजमान जिनमूर्ति का पूजन प्रणाल किया था ।  
कर्मवेगा ने मनुदेव के साथ नि-कू-चै-पालय में जिन-पूजा  
की थी । मैनासुदरी अर्ध दिन प्रतिमा का प्रस्ताल करता थी  
और अपने पति भापाल राजा का सधोदक लगाती थी ।  
इसी प्रकार स्थियों के द्वारा पूजा-प्रस्ताल किये जाने के अनेक  
उदाहरण पा जाते हैं ।

। हर्ष का विषय है कि मात्र भी जैन समाज में स्थिया  
मगधान का प्रस्ताल पूजन जाती हैं । कहीं कहीं कश्चित् लोग  
उन्हें इस समकाय में रोकने भी हैं और उनकी यहा तद्वा  
आलोचना करते हैं । उन्हें यह लोच : चाहिये कि जो आर्थिका  
होने का अधिकार रखती है वह पूजा प्रस्ताल में हर लके यह  
कैसी विविध बात है ? पूजा प्रस्ताल को आरम का है जब  
यह कम-बस का नमन है विनय नगर । कर्मा आदि  
में ही सफर लगाना पड़ता है जब कि आर्थिका दोहा सफर  
और निर्वन्ध का करण है, जितने कर्मों को का आधि  
रणी है ।

अब शिचार कीजिये कि एक स्त्री मोक्ष के कारणभूत संवर और निर्जरा करने वाले कार्य तो कर सकती है किन्तु संसार के कारणभूत बंधकर्ता पूजन प्रक्षाल आदि कार्य नहीं कर सकती ! यह कैसे स्वीकार किया जाय ?

जैनधर्म सदा से उदार रहा है, उसे स्त्री-पुरुष या ब्राह्मण शूद्र का लिंग-भेद या वर्ण-भेद-जनित कोई पक्षपात नहीं था । हाँ, कुछ ऐसे दुराग्रही व्यक्ति हो गये हैं जिन्होंने ऐसे पक्षपाती कथन करके जैनधर्म को कलंकित किया है । इसी से खेदस्त्रिप्त होकर आचार्यकल्प पंडितप्रवर टोडरमल जी ने लिखा था—

‘बहुरि कैई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है । अर तिनकौ जिन वचन रह्रावे हैं । तिनकौ जैनमत का शास्त्र जानि प्रमाण न करना । तहां भी प्रमाणादिक तैं परोक्षा करि विरुद्ध अर्थ को मिथ्या जानना ।’

—मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३०७ ।

तात्पर्य यह है कि जिन ग्रंथों में जैनधर्म की उदारता के विरुद्ध कथन है, उन्हें जैन ग्रंथ कहे जाने पर भी मिथ्या मानना चाहिये । कारण कि कितने ही पक्षपाती लोग अन्य संस्कृतियों से प्रभावित होकर स्त्रियों के अधिकारों को तथा जैनधर्म की उदारता को कुचलते-तुंथे भी अपने को निष्पक्ष मानकर ग्रंथकार बन बैठे हैं । जहाँ शूद्र कन्यार्य भी जिनपूजा और प्रतिमा प्रक्षाल कर सकती हैं । ( देगो गौतमचरित्र तीसरा अधिकार ) वहाँ स्त्रियों को पूजाप्रक्षाल का अनाधिकारी बताना घोर अज्ञान है । स्त्रियां पूजा प्रक्षाल ही नहीं करती थीं, किन्तु-दान भी देती थीं । यथा—

श्रीनिनेन्द्रपदाभोजसपर्यायां सुमानसा ।

शचीव सा तदा जाता जैनधर्मपरायणा ॥८६॥

ज्ञानधनाय कांताय शुद्धचारित्रधारिणे ।

सुनीन्द्राय शुभाहार ददौ पापविनाशनम् ॥८७॥

— गौतमचरित्र तीसरा अधिकार ।

वर्णन—इच्छित्ता नाम की ब्राह्मणी जिन भगवान की सेवा में अपना चित्त लगाती थी और इन्द्राणी के समान जैन धर्म में उत्पन्न हो गई थी। उस समय यह ब्राह्मणी सम्यग्दानी हुए चारित्र्यधारी उद्यम मुनियों की पापनाशक शुभ आहार लेती थी।

इसी प्रकार जैन शास्त्रों में शिवों की धार्मिक स्थितियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

जहां तुलसीदास जी ने लिख दिया है—

दोर गवार शूद्र अरु नारी ।

ये सब ताइन के अधिकारी ॥

जहां जैनधर्म ने स्त्रियों की प्रतिष्ठा करना बताया है सम्मान करना सिखाया है और उन्हें समाज अधिकार दिये हैं। जहां वैदिक ग्रन्थों में स्त्रियों की बेह पदने की कावा नहीं है (जो यज्ञी माऽधीयाताम्) वहीं जैनियों के ग्रन्थ लोपकर भगवान् आदिनाथ ने स्वयं अपनी जाति और सुन्दरी नामक मुनियों को बताया। उन्हें सभी जाति के प्रति बहुत सम्मान था। मुनियों को पढ़ने के लिये उन्होंने कहा था—

इदं च पूर्वयश्चेदमिदं शीलमनीदृशं ।

विद्यया चेद्विभूष्येत सफलं जन्म वामिदं ॥६७॥

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः ।

नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं ॥६८॥

तद्विद्यां ग्रहणे यत्नं पुत्रिके कुरुतं युवां ।

तत्संग्रहणकालोऽयं युवयोर्गततेऽधुना ॥१०२॥

आदिपुराण पर्व १६।

अर्थात्-पुत्रियो । यदि तुम्हारा यह शरीर, अवस्था और अनुपम शील विद्या से विभूषित किया जावे तो तुम दोनों का जन्म सफल हो सकता है । संसार में विद्यावान् पुरुष, विद्वानों के द्वारा मान्य होता है । अगर नारी पढ़ी लिखी-विद्यावती हो तो वह स्त्रियों में प्रधान गिनी जाती है । इसलिये पुत्रियो ! तुम भी विद्या ग्रहण करने का प्रयत्न करो । तुम दोनों को विद्या ग्रहण करने का यही समय है ।

इस प्रकार स्त्री शिक्षा के प्रति सद्भाव रखने वाले भगवान् आदिनाथ ने विधिपूर्वक स्वयं ही पुत्रियों को पढ़ाना प्रारंभ किया ।

फेद है कि उन्हीं के अनुयायी कहे जाने वाले कुछ लोग स्त्रियों को विद्याध्ययन, पूजा प्रदत्त आदि का प्रतिकारी यत्नाकर उन्हें प्रभाल-पूजा करने से आज भी रोकते हैं । और कहीं कहीं स्त्रियों को पढ़ाना अभी भी अनुचित माना जाता है ! स्त्रियों को मूर्ख रख कर स्वार्थी पुरुषों ने उनके साथ पशु तुल्य व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया और मन माने ग्रंथ बनाकर

मानो मर पेट निन्दा कर-डाली । एक स्थान पर नारी निन्दा करते हुये एक विद्वान (१) ने लिखा है

आपदाभक्तो नारी नारी नरकवर्तिनी ।

निनाशकारण नारी नारी प्रत्यक्षगोचरी ॥

जिस प्रकार स्त्रीयों पुरुष स्त्रियों के प्रति ऐसे निन्दा स्वरूप श्लोक रच सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियों भी यदि सम्भारचना करनी तो वे भी यों लिख सकती हैं कि—

पुरुषो रिपदां खानिः पुमान् नरकपट्टतिः ।

पुरुष पापानां भूल पुमान् प्रत्यक्षराक्षसः ॥

बुद्ध जैन प्रत्यक्षारों ने भी स्त्रियों के प्रति अपमान कटु और अशोभन खाने लिख दी हैं । कहाँ उन्हें विष येन लिखा है वहाँ कहाँ जहरोलो भागिन लिख डाला है । बहों विष बुझो खारी लिखा है तो बहों पुगुणों को खान लिख दिया । मानो इसा के उत्तर-स्वरूप एक सतेमान कवि ने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं—

घोर, बुद्ध धर्म राम हृष्य से अनुपम जानी ।

नितक मोखले गांधी हैं अद्भुत गुण जानी ॥

पुरुष जाति है गंध हर रही जिन के उपा ।

गान्धि जाति थी प्रथम महिला उनही मूवर ।

पकड़ पकड़ उगड़ी हमने खलना निखलाया ।

खुर खोलना और भ्रम करना निखलाया ॥

राजपूतिमी सेव धार भरना निखलाया ।

व्याप्त हवारी हुई स्थान एक मू पर आया ॥

पुरुष वर्ग खेला गोदी में सतत हमारी ।  
 भले बना हो सम्प्रति हम पर अत्याचारी ॥  
 किन्तु यही सन्तोष हटी नहि हम निज प्रण से ।  
 पुरुष जाति क्या उन्नत हो सकेगी इस ऋण से ॥

भगवान् महावीर के शासन में महिलाओं के लिये बहुत उच्च स्थान है । महावीर स्वामी ने स्वयं अनेक महिलाओं का उद्धार किया था । चन्दना सती को एक विद्याधर उठा ले गया था, वहाँ से वह भीलों के पंजे में फँस गई । जब वह जैसे तैसे छूट कर आई तो स्वार्थी समाज ने उसे शंका की दृष्टि से देखा । एक जगह उसे दासी के स्थान पर दीनतापूर्ण स्थान मिला । उसे सब तिरस्कृत करते थे । ऐसी स्थिति में भी भगवान् महावीर ने उसके हाथ से आहार ग्रहण किया और वह भगवान् महावीर के सघ में सर्वश्रेष्ठ आर्यिका हो गई ।

इसी से सिद्ध है कि जैन धर्म में महिलाओं को उतना ही उच्च स्थान प्राप्त है जितना कि पुरुषों को ।



## गैवाहिक उदारता

जैनधर्म की सबसे अधिक प्रशंसनीय उदारता विवाह स्वयं है। यहाँ धर्मादि का विचार न करके गुणवान् घर-कन्या से सदाय करने को स्पष्ट आज्ञा है। हरिवंशपुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि पहले यिज्ञातीय विवाह होत ये अमघण विवाह राते ये सगोत्र विवाह भी होते ये, स्वयंवर होता या धर्मिचारजात दस्त्रों से विवाह होते ये मनेच्छों से विवाह होते ये परंपाओं से विवाह होते ये यहाँ तक कि बुद्धत्व में भी विवाह हो जाते थे। फिर भी ऐसे विवाह करने वालों का न तो मन्दिर सम्म होता था न वे जाति विरादरी से कारिज किये जाते थे और न उन्हें कोई पूजा की दृष्टि से दृश्यता थी।

वेद है कि वर्तमान में कुछ पुरातन लोग कल्पित उप जातियों—अण्डेलपाल परमार, गोलालारे, गोलापूर्य अमरावत सम्राज्य पुराण, हुमर आदि में भी परस्पर विवाह करने से घने की बिगड़ता हुआ दृश्यने लगन हैं।

जैन शास्त्रों में गैवाहिक उदारता के संस्कारों स्पष्ट प्रमाण पाये जाते हैं। भगवद्विजयदेवाचार्य ने आदिपुराण में लिखा है—

यदा यद्रेण वोढव्या नान्या स्थां तां च नैवम् ।

सहेत् स्थां त च राजस्या स्थां शिज्या विदिव्य दत्त ॥

इस विषयक विशेष जानकारी के लिये अनेक की 'दिवादीय विवाह मोमांसा' देखिये।



अर्थात् - शूद्र को शूद्र की कन्या से विवाह करना चाहिये, वैश्य वैश्य की तथा शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय अपने वर्ण की तथा वैश्य और शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है और ब्राह्मण अपने वर्ण की तथा शेष तीन वर्ण की कन्याओं से भी विवाह कर सकता है ।

इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी जो लोग कल्पित उपजा-जितों में ( अन्तर्जातीय ) विवाह करने में भी धर्म-कर्म की हानि समझते हैं उनकी बुद्धि के लिये क्या कहा जाय ?

अदीर्घदर्शी, अविचारी एवं हठग्राही लोगों को जाति के झूठे अभिमान के सामने आगम और युक्तियाँ भी व्यर्थ दिखाई देती हैं ।

जैन धर्म में जाति की कोई महत्ता नहीं है । जैन शास्त्रों ने जाति-गत थोथेपन के संबन्ध में स्पष्ट घोषित किया है कि-

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे ।

कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना ॥

अर्थात्—इस अनादि संसार में कामदेव सदा से दुर्निवार चला आ रहा है । तथा कुल का मूल कामिनी है । तब इसके आधार पर जाति-कल्पना करना कहाँ तक ठीक है ?

तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार कामदेव की चपेट में आ गया हो । तब जाति को लेकर उच्चता-नीचता का अभिमान करना व्यर्थ है । यही बात गुणमद्राचार्य ने उत्तरपुराण के पद्य ७४ में और भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा है ।

अथाकृत्वात्तिमेदना देहऽस्मिन् च दशैर्नात्ति ।  
 आश्रयादिषु शूद्राद्यर्गमाधानप्रवर्तनात् ॥४६१॥

अर्थात्—इस शरीर में वर्ण या आकार से कुछ भेद  
 निर्धार नहीं देता । तथा आश्रय, अश्रय, वैयर्थ्य में यहाँ के  
 लोग भी, आर्माधान की प्रवृत्ति रखी जाती है । तब कोई अपने  
 कर्म या उच्च वर्ण का आश्रितमान कैसे कर सकता है ? ।

सब तो यह है कि जो वर्तमान में सदाचारी है वही  
 जो है और जो दुष्टचारी है वह नीच है ।

इस प्रकार जाति और वर्ण की कल्पना की मूल्य न  
 कर जैनाचार्यों ने आचरण पर जोर दिया है । जैनधर्म की  
 इन उद्धारता को ठोकर मार कर जो लोग अतर्जतीय विवाद  
 का भी निषेध करते हैं उनही स्थानीय बुद्धि पर विचार न  
 करते जैन समाज को अपना क्षेत्र विस्तृत उदार एवं अद्विष्ट  
 बनावा चाहिये ।

जैन शास्त्रों की कथा भयों की या प्रथमानुयोग की  
 उगार लिये 'उनमें आपकी पद पद पर वैज्ञानिक उद्धारता  
 दिखाई देगी । पहले स्वयम्भुव प्रथा बालू थी, उसमें जाति का कुछ  
 का विस्तार करके गुण का हा ध्यान रखा जाता था । जो  
 कथा किता भी छोटे या बड़े हुए वाले को उसके गुणों पर  
 मुग्ध होकर विवाद लेगी थी उसे कोई धुरा नहीं करना था ।  
 शिष्टाचार पुराण में इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि -

अथा ज्ञाते कृचिरं स्वयम्भुवमना वर ।

इति नमस्कृत्वा वा क्रमो नास्ति स्वयम्भुव ॥११-७१॥

अर्थात्—स्वयम्बरगत कन्या अपने पसन्द वर को स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयम्बर में कुलीनता अकुलीनता का कोई नियम नहीं होता।

जहां कुलीन अकुलीन का विचार न करके इतनी वैवाहिक उदारता बताई गई है वहां अन्तर्जातीय विवाह की कौन सी बड़ी बात है? इनमें तो एक ही जाति, एक ही धर्म, और एक ही आचार-विचार वालों में संबंध करना है।



जैन शास्त्रों में विजातीय विवाह-के प्रमाण

१—राजा श्रेणिक ( क्षत्रिय ) ने ब्राह्मण कन्या नन्दश्री से विवाह किया था और उससे अभयकुमार पुत्र उत्पन्न हुआ था। (भवतो विप्रकन्यायां सुतोऽभूदभयाह्वयः) वाद में विजातीय माता पिता से उत्पन्न अभयकुमार मोक्ष गया। ( उत्तरपुराण पर्य ७४ श्लोक ४२३ से २६ तक )

२—राजा श्रेणिक ( क्षत्रिय ने अपनी पुत्री धन्यकुमार ( धैर्य ) को दी थी। ( पुण्याश्रव कथाकोष )

३—राजा जयसेन (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिकर (धैर्य) को दी थी। इनके ३६ धैर्य पत्नियां थीं और एक पत्नी राजकुमारी वसुन्धरा भी क्षत्रिय थी। फिर भी वे मोक्ष गये। ( उत्तरपुराण पर्य ७६ श्लोक ३४६-४७ )

४-कुवेरप्रिय सेठ (वैश्य) ने अपनी पुत्री क्षत्रिय कुमार को विवाही थी।

५-क्षत्रिय राजा लोकपाल की रानी वैश्य थी।

६-अविष्यदस (वैश्य) ने क्षत्रिय (क्षत्रिय) राजा की पुत्री अविष्यदस से विवाह किया था तथा इक्ष्वाकु के पुत्र अविष्यदस की कन्या स्वयंवर (क्षत्रिया) को भी विवाह था। (कुलधर्म कथा०)

७-मगधान नेमिनाथ का काका वसुदेव (क्षत्रिय) ने अविष्यदस से विवाह किया था। उससे जराकुमार नाम का पुत्र जो मोक्ष गया। (हरिवंशपुराण)

८-वसुदेव (वैश्य) की पुत्री वसुदेवना वसुदेव (क्षत्रिय) से विवाह थी। (हरि०)

९-जयप्रदाय (ब्राह्मण) सुप्रिय और यशोप्रिय न भी कन्या का कन्या वसुदेवकुमार (क्षत्रिय) को विवाह थी। (हरि०)

१०-ब्राह्मण कुल में क्षत्रिय माता से उत्पन्न हुई कन्या कामका को वसुदेव ने विवाह था। (हरिवंशपुराण सर्ग २३ श्लोक ४१-४२)

११-सेठ कामदेव (वैश्य) ने अपनी पुत्री वसुदेवना का विवाह वसुदेव (क्षत्रिय) से किया था। (हरि०)

१२-महाराजा उपभोक्ता (क्षत्रिय) ने भाव कन्या मित्रकन्या से विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र विद्याजी नामक पुत्र हुआ। (अविष्यदस)

१३—जयकुमार का सुलोचना से विवाह हुआ था। कि इन दोनों की एक जाति नहीं थी।

१४—जीवंधर कुमार वैश्य पुत्र कहे जाते थे। उनसे विद्याधर गरुड़वेग की कन्या गंधर्वदत्ता को विवाह था। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३२०-४४)

जीवंधरकुमार वैश्य-पुत्र के नाम से ही प्रसिद्ध थे। कन्या कि वे जन्मकाल से ही वैश्य सेठ गंधोत्कट के यहां पले थे और उन्हीं के पुत्र कहे जाते थे। विजातीय विवाह के विरोधियों का कहना है कि कुछ भी हो, किन्तु जीवंधरकुमार थे तो क्षत्रिय पुत्र ही। उन परिदृष्टियों की इस बात की मानने में भी हमें कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि फिर भी उनके विजातीय विवाह की सिद्धि हो ही जाती है। यथा—

जीवंधरकुमार क्षत्रिय थे उनसे वैश्रवणदत्त वैश्य की पुत्री सुरमंजरी से विवाह किया। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ३४७ और ३४८) इसी प्रकार कुमारदत्त वैश्य की कन्या गुणमाला का भी जीवंधर स्वामी के साथ विवाह हुआ था (उत्तर० पर्व ७५) इसके अतिरिक्त जीवंधर ने धनपति (क्षत्रिय) राजा की कन्या पद्मात्मिका को विवाह किया। सागरदत्त सेठ वैश्य की लड़की विमला से विवाह किया था। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ५२७) तात्पर्य यह है कि जीवंधर को क्षत्रिय मानिये या वैश्य, दोनों दशाओं में उनका विजातीय विवाह होना सिद्ध है। और वे अनेक विजातीय विवाह करके भी मोक्ष गये।

१५—शालिभद्र सेठ ने विदेश में जाकर अनेक विदेशीय एवं विजातीय कन्याओं से विवाह किया था।

१६-अग्निमूत स्वयं ब्राह्मण था, उसकी एक स्त्रिया ब्राह्मणी को और दूसरी वैश्य । यथा—

विप्रस्तवाग्निभूतारयस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया ।

एता वैश्यसुता, धनुर्ब्राह्मण्या गिरभूतिमाक ॥

दुहिता चित्रसेनारया विटसुनायामजायत ॥

(उत्तरपुराण पद्य ७५ श्लोक ७१-७२)

१७-अग्निमूत की वैश्य पत्नी से चित्रसेना कन्या हुई और वह स्वयं ब्राह्मण को बियाही गई । (उत्तरपुराण पद्य ७५ श्लोक ७३)

१८-उत्तर योशनामी महाशत्रु भरत ने ३० हजार स्त्री कन्याओं से विवाह किया था । विटु उनका हठ कम की हुआ था । जिन स्त्रीयुक्त कन्याओं की भरत ने विवाह था वे स्त्रीयुक्त धर्म-कम विहीन थे । यथा—

इत्युपर्यरपापह्ना साधय म्लेच्छभूषण ।

तेभ्य कन्यादिरत्नानि प्रभाभोग्यान्पुत्राहरत् ॥१४१॥

पर्यर्कमवहिर्मुक्ता इत्यमी म्लेच्छका मता १४२॥

(आदिपुराण पद्य ११)

कहिये ऐसे धर्म-कम-विहीन स्त्रीयुक्तों की कन्याओं से विवाह कर लेना निषिद्ध था अथवा स्त्रीयुक्त नहीं था । पत्नी केवल ही उपजाति की उनसे कुछ नहीं पाना था । १४१ स्त्रीयुक्तों से विवाह करने की मता १४२ स्त्रीयुक्तों की उपजाति से विवाह सम्बन्ध नहीं प्राप्त कर देना पड़ेगा ?

१६—श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने भाई राजकुमार विवाह क्षत्रिय कन्याओं के अतिरिक्त सोमशर्मा ब्राह्मण पुत्री सोमा से भी किया था। (हरिवंशपुराण ब्र० जिनदा ३४-३६ तथा हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत )

२०—मदनवेगा 'गौरिक' जाति की थी। वसुदेव जी के 'गौरिक' जाति नहीं थी। फिर भी इन दोनों का विवाह हुआ था। यह अन्तर्जातीय विवाह का अच्छा उदाहरण है। (हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत )

२१—सिंहक नाम के वैश्य का विवाह एक कौशिक वंशीय क्षत्रिय कन्या से हुआ था।

२२—जीवंधर कुमार वैश्य थे, फिर भी उन्होंने राजागयेन्द्र (क्षत्रिय) की कन्या रत्नवती से विवाह किया। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६४६-५१)

२३—राजा धनपति (क्षत्रिय) की कन्या पद्मा को जीवंधर कुमार (वैश्य) ने विवाह था। (शतचूड़ामणि लघु ५, श्लोक ४२-४६)

२४—भगवान् शान्तिनाथ (चक्रवर्ती) सोलहवें तीर्थंकर हुए हैं। उनकी कई पत्नियाँ तो म्लेच्छ कन्याएँ थीं। (शान्तिनाथपुराण)

२५—गोपेन्द्र ग्वाला की कन्या सेठ गन्धोत्कट (वैश्य) के पुत्र नन्दा के साथ विवाही गई थी। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३००)

२६—नागकुमार ने तो वेश्या-पुत्रियों से भी विवाह किया था। फिर भी उन्हें दिगम्बर मुनि की दीक्षा ग्रहण की थी।

निकुमार चरित ) इतना होने पर भी ये जैनियों के पूज्य हैं। किंतु जैन धर्मानुयायी वैश्य जाति में ही परस्पर व्यवसाय सम्बन्ध करने में जिन्हें सत्वातिरस का नाश और धर्म का हानि दिखाई देता है उनकी विविध बुद्धि पर क्या विश्वास नहीं रहती। इन शास्त्रीय उदाहरणों को दृष्टकर वैष्णव विवाह के विरोधियों को अपनी ग्राह्य खोजनी चाहिए।

जैन शास्त्रों में अथ इस प्रकार के संकटों उदाहरण मिलने हैं कि जैन विवाह सम्बन्ध के लिये किसी वन जानि या धर्म का विचार नहीं किया गया है और ऐसे विवाह करने वाले को और मोक्ष को प्राप्त हुये हैं तब एक हो चर्चें एक ही धर्म और एक ही प्रकार के जैनियों में परस्परिक सम्बन्ध (सामंतीय विवाह) करने में कौनसा हानि है ?

॥॥

### ऐतिहासिक प्रमाण

इन शास्त्रीय प्रमाणों के अतिरिक्त ऐस ही बनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिलते हैं।

१- गझाट का प्रमुख ने प्रीत हर के स्वेच्छ दत्ता केदुक्त की कथा से विवाह किया था। और फिर गझाट गझाट दरमो के निरुद्ध दिग्गज मुनि हो आये।

२- शास्त्र में निम्नोक्त नेमपल प्रमाण (प्रेरणा) भी है, और इनकी कथा भी आदि की थी। फिर भी



वे बड़े धर्मात्मा थे ११ हजार श्वेताम्बरों और ३ सौ दिगम्बरों ने मिलकर उन्हें संघपति, पद से विभूषित किया था। यह संवत् १२२० की बात है। तेजपाल की विजातीय पत्नी थी। फिर भी वह 'धर्मपत्नी' के पद पर आरूढ़ थी। इस सम्बन्ध में आबू के जैन मन्दिर में संवत् १२६७ का जो शिलालेख मिला है वह इस प्रकार है:—

ॐ संवत् १२८७ वर्ष वैशाख सुदी १४ गुरौ प्राग्वाट-  
ज्ञातीया चंड प्रचंड प्रसाद महश्री सोमान्वये महं श्री असराज  
सुत महं श्री तेजपालने श्रीमत्पत्तनवास्तव्य मोढ़ ज्ञातीय ठो  
आह्वणमुत ठः आससुतायाः ठकराज्ञी संतोपाकुक्षिसंभूतायाः  
महं श्री तेजपालः द्वितीय भार्या महं सुहडादेव्याः श्रेयार्थ ॥”

यह आज से ७०० वर्ष पूर्व एक सुप्रसिद्ध महापुरुष द्वारा किये गये अन्तर्जातीय (पोरवाढ़ + मोढ़) विवाह का उदाहरण है।

३—मथुरा के एक प्रतिमा लेख से विदित है कि उसके प्रतिष्ठाकारक वैश्य थे। और उनकी धर्मपत्नी क्षत्रिया थी।

४—जोधपुर के पास घटियाला ग्राम से संवत् ६१८ का एक शिलालेख मिला है। इसमें कम्बुक नामक व्यक्ति के जैन मन्दिर, स्तम्भादि बनवाने का उल्लेख है। यह कम्बुक द्वाय उस वंश का था जिसके पूर्व पुरुष ब्राह्मण थे और उन्होंने क्षत्रिय कन्या से विवाह किया था।

(प्राचीन जैन लेख संग्रह)

५—पञ्जाबनी पोग्गालों (घँघ्यों) का पाँटों (ब्राह्मणों) के साथ अभी भी कई जगह विवाह सम्बन्ध होता है। यह

जैन धर्म के लोग पद्मावती पोरवालों में विवाह कराते थे। पश्चात् इनमें भी परस्पर वै विवाह हो गया।

६-काल १५० वर्ष पूर्व जब बीजावर्गी जाति के लोगों ने पोरवालों के समान ही जैनधर्म धारण कर लिया तब भी बीजावर्गीयों ने उनका प्रतिहार कर दिया तब उन्हें वे भी पोरवालों की कटिनाई दिगाई देने लगे। तब जैन बीजावर्गीयों ने कहा। उस समय दूरदर्शी ज्ञानेयवालों ने उन्हें समझात दत्त हुये कहा कि "जिने धर्म-बन्धु कहने हैं उस धर्म-बन्धु कहने में हमें कुछ भी शकोय नहीं है। आज जो तुम्हें अपनी जाति के धर्म में डालकर एक रूप ब्रिये कर रहे हैं।" इस प्रकार ज्ञानेयवालों ने बीजावर्गीयों को अपने में मिला कर उनके साथ वंशी व्यवहार प्रारम्भ कर दिया।

७-गोधपुर के पास से लगभग ६०० का एक शिवालेख मिला है। जिससे प्रमाण है कि एक सन्तदार भ वेद मन्दिर केवाला था। उसका शिव स्तम्भ और भाग म मथी थी।

८-राजा जयसिंह ने अपना अपना पिता-माता राजा जयसिंह काका को विवाही थी।

इस शास्त्रीय एवं वेद-मन्त्र उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध है कि "नवधर्म" के लिए यदि मूलक मन्त्रावली नहीं है तो जैन धर्म के लोग भी धर्म के लिए ही विवाह करके विवाह होय वह विवाही मन्त्रा को जैनधर्म तथा जैनधार के अनुकूल बना लिया जाता था।

## जातिमद और जैन दीक्षा

जहां जैनाचार्यों ने जातिमद की पद-पद पर निष्ठा की वहां वर्तमान जैन समाज में जाति-मद की पूजा हो रही है हमने धर्म के असली रूप को भुला दिया है और जाति विकृत रूप को असली रूप मान लिया है। श्री अमृतगति आचार्य ने जातियों को कल्पित और मात्र आचार पर आधारित बताया है। यथा:—

ब्राह्मण-क्षत्रियादीनां चतुर्णामपि तत्त्वतः ।

एकैव मानुषीजातिराचारेण विभज्यते ॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह जातियां तो वास्तव में आचरण पर ही आधारित हैं। वास्तव में तो एक मनुष्य जाति ही है। यदि इन जातियों में वास्तविक भेद माना जाय तो आचार्य कहते हैं:—

भेदे जायते विप्राणां क्षत्रियां न कथंचन ।

शालिजाती मया दृष्टः कोद्रवस्य न संभवः ॥

अर्थात्—यदि इन जातियों का भेद वास्तविक होता तो एक ब्राह्मणी से कभी क्षत्रिय-पुत्र उत्पन्न नहीं होना चाहिये था क्योंकि चावलों की जानि में मैंने कभी कोदों उत्पन्न होते नहीं देखे ।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जैनाचार्य जातियों को परम्परागत स्थायी नहीं मानते और वे ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्रियसंतान का

अपना होना स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में समझ में नहीं आता कि हमारे आधुनिक स्थितिपालक पंडित लोग जातिधर्म को अजर अमर किस आधार पर मान रहे हैं। और धर्मवर्ण विवाद का निषेध कैसे करते हैं। अहाँ आचार्य महाराज लक्षणों के गर्म से हाजिर सतान का होना मानते हैं यहाँ प्रकार स्थितिपालक पंडित उसे धर्म का अनाधिकारी बनलाते हैं और कहते हैं कि उनकी विषयशुद्धि नहीं रहेगी। इस प्रकार विषयशुद्धि को धर्म से भी अधिक महत्वपूर्ण मानने वालों के बिने भी कुन्वकुन्वाचार्य ने कहा है—

पावे देहो यदिजह पावि य शुला पावि य जाइ सगुणो ।

को यदिम गुणहीणा पाहु सबणा पव मावमा हाई ॥

—बर्तन पाहु ॥

अर्थात्—ज तो देह की धरना होती है न कुछ की और न उँचा जानि का बढ़लाने से हो कोई बढ़ा हो जाता है। क्योंकि गुणहीन की कीन धरना करेगा? गुणों के बिना कोई आरक या मुनि भी नहीं कहा जा सकता।

इसमें स्पष्ट निश्चय है कि गुणों के जाने जाति का कुछ हो कोई भ्रम नहीं है। अतुलीय और नीच जाति के बड़े जाने वाले अनेक गुणवान महापुरुष बन्दीय हो गये हैं और हैं। सच है जब कि बड़ी जानि और बड़े गुण के बड़े आरक व न बनक योग्यध्याय भोज करते गये हैं। इसलिये जानि-न को बाहर गुणों को पूजा करना चाहिये।

पूज्य लुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी—वर्तमान युग के सर्वमान्य जैन सन्त-पुरुष हैं। उन्होंने अपने उपदेशों, प्रवचनों और लेखों में पद पद पर घोषित किया है कि जातिमद का त्याग कर गुणों की प्रतिष्ठा करो। उनकी 'जीवनगाथा' नामक पुस्तक से यहाँ कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं, जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि वे कितने उदारमना हैं, और उन्होंने जैनधर्म की उदारता को किस रूप में समझा है।

१—यह कोई नियम नहीं कि उत्तम कुल में जन्म लेने से ही मनुष्य उत्तम गति का पात्र हो और जघन्य कुल में जन्म लेने से ही अधम गति का पात्र हो। यह तो परिणामों को निर्मलता और कलुषता पर निर्भर है। (पृष्ठ ३१०)

२—यह कोई नियम नहीं कि अमुक जाति में ही सदा-चारो हो और अमुक जाति में नहीं। (पृष्ठ ३६२)

३—आत्मा तो सब का एक लक्षण वाला है, केवल कर्म-कृत भेद है। चारों गतिवाला जीव सम्यग्दर्शन का पात्र है। फिर क्या शूद्रों को सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता? सम्यग्दर्शन की बात तो दूर, अस्पृश्य शूद्र आचक के घन घर सकता है, लुल्लक भी हो सकता है। (पृष्ठ ३५२)

४—जब कि चारों गतियों में सम्यग्दर्शन हो सकता है, तब पंचलविवर्या होने पर यदि भर्मा को सम्यग्दर्शन हो जावे तो कौन रोकने वाला है? (पृष्ठ ६१)

५—जैसे सूर्य का प्रकाश किसी जाति को अपेक्षा नहीं करता, धर्म भी किसी जाति-विशेष को पंचक सम्पत्ति नहीं। (पृष्ठ ६१३)

भी तारण स्वामी—खोलनीं शताब्दी में जैन समाज  
 एक व्यापारिक सत्त हो गये हैं। उन्होंने अपने खातिर  
 'अर्थ' के तीसरे पाठ में एक खूब लिखा है—

“ऊँच नीच दरयत तबु निगोद खाडे दृश्यते ।”

अर्थात्—जो मनुष्य अविमान के वशीभूत होकर दूसरों  
 का नाश और अपने को ऊँचा समझता है वह निगोद में  
 डूब जाता है ।

कहीं ने अपने 'उपदेश्य मुद्रसार' ग्रन्थ में कहा है—

“आइल न हु पिछदि मुद्र सम्मय दमन पिच्छा ।”

अर्थात्—जानि कुल को कौन पूछता है ? पालन में ता  
 हूँ सत्यग्रहण ही महत्त्व का होता है । अथवा यों कहना  
 चाहिये कि मुद्र सत्यग्रहण के लिये कितनी जाति या कुल की  
 आवश्यकता नहीं होगी यह किसी भी उच्च या नीच कुल वाले  
 के ही सकता है ।

इस प्रकार प्राचीन से प्राचीन और आधुनिकतम वैसा-  
 नारी सत्त पुरुषों पर महाप्राप्ति ने जानि मर को निरा को  
 है और जानि कुल आदि को महत्त्व न देकर मुद्रों पर  
 महत्त्व को ही बाधकारी माना है । साथ ही यह भी स्पष्ट  
 किया है कि जेम्स में होलिंग होने के लिये कोई भी  
 जाति या कुल बाधक नहीं हो सकता । आगे के दृष्टान्त में दिने  
 गये अर्थों से यह स्पष्ट बात हो जायगा ।

## जो चाहे सो आये !

जैनधर्म की सबसे बड़ी उदारता यह है कि उसका द्वार सबके लिये सदैव खुला रहता है । भगवान महावीर की वाणी, जैनाचार्यों के उपदेश और जैन शास्त्रों के उद्धरणों से स्पष्ट है कि जैनधर्म में दीक्षित होने के लिये सबको सदा खुला निमंत्रण है । यह बात दूसरी है कि वर्तमान जैन समाज ने जैनधर्म की उदारता को भुला दिया है, और नवागन्तुकों के प्रति विविध प्रकार की रोक-थाम होने लगी है, किन्तु जैनधर्म की यह स्पष्ट घोषणा है कि 'जो चाहे सो आये । और आत्मकल्याण करे ।'

स्वर्गीय में सन्तपुरुष न्यायाचार्य जुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी की जैन समाज में बड़ी मान्यता रखी है । वे जैनधर्म के मर्मज्ञ, जैनाचार के परिपालक और करुणामूर्ति महापुरुष थे, उन्होंने अनेक बार अपने प्रवचनों में जैनधर्म की उदारता की घोषणा की थी । उनके अनेक उदार प्रवचनों में से एक का कुछ अंश है: -

“भइया ! धर्मधारण के सम्बन्ध में लोग विवाद करते हैं, किन्तु इसमें विवाद की क्या बात है ! धर्म पर न तो किसी जानि का अधिकार होता है और न किसी धर्म की मानिकी ! धर्म को तो जो पाले, उसी का है । धर्म धारण करने से कौन

होना ही चाहे

[ ७७ ]

कैसे रोक सकता है ? धर्म सभी का उद्धारक है । जो धारण हो उसी का धर्म ।

इस युग के आध्यात्मिक मनुष्य श्री बानजी स्वामी महाराज (काठियावाड़) में पैदा हुए अपने निम्न प्रवचनों के द्वारा हजारों नर-नारियों को जैनधर्म का धार आकर्षित किया है । उनका अनुयायी मैं बहकते हुए किसी धर्म, समाज और धर्म का व्यक्ति जैनधर्म का धारण कर सकता है । या यह कि अनेक 'हरेजिन' यद्यपि भी जैनधर्म का धारण करने लगे हैं । सबसुख ही वे जैनधर्म के परार्थ उपदेश हैं । उनके आश्रम में हमने इस धारणा को क्रियाकर्म में स्पष्ट देखा है कि जो चाहे सो धार्ये । हर किसी को जैनधर्म धारण करके आत्मकल्याण करने का समान अधिकार है ।

जैनधर्म की यह विशेषता है कि उसमें बिना किसी भेदभाव के किसी को भी बोधित करके समान अधिकार दिये जा सकते हैं । आदिपुराण पृष्ठ ३६ श्लोक ३० व ७१ तक देखने से यह उद्धारता मलोन्मत्ति ज्ञान हो आसानी । इस उद्धारण में स्पष्ट कहा— "विधिवाताऽपि नैव सम्मता धारितं हस्तमनसता ॥"

इसी विषय की टीकाकार पं० होबलदास जी ने इस प्रकार लिखा है "यदि भग्न पुरुष जो धर्म के धारक उत्तम धारक हैं तिनमें कया प्रशस्ति प्राप्त की जायेगी जो कि धार धारक नहीं किया के धारक तिनमें बुद्धि बर यह कहेंगे पुरुष के अनुग्रह में कयोनिमग्न न होय पदा धार्य लक्ष्य की क्रिया की का आधरण करके हैं धारि धार्य अर्थात् समाज करी ।





## अत्यावश्यक निवेदन

महानुमाय ।

‘नैत्रघम की उदारता’ की इसमें पूर्ण अनक आपुनिया प्रकाशित हो चुकी है । इसके मुखराती मगरी आदि सनेक मा तोय भाषाओं में अनुवाद भी मुद्रित हो चुक है । इस पुरनक के अनुमोदन में निम्नांकित महानुमायों न मुखकठ छ प्रगुता की है—

१-रय० आचार्य सूर्यसागर जी महाराज २-त्यानमूर्ति  
रय० बाबा भागीरथ जी वर्णी, ३-धर्मरत्न रय० दीपकाद जी वर्णी,  
४-रये मुनि श्री हिमाचलपित्रय जी व्यापनाथ ५ मुनि श्री  
तिलकपित्रय जी महाराज, ६ मुनि श्री व्यायपित्रय जी महाराज  
‘व्यापनाथ’, ७-रय० मुनि श्री वृन्वद जी महाराज धर्मोदरा  
८-रय० मुनि श्री वृन्दीषद जी महाराज ९-रय प०  
शोधर जी व्यापनाथ १०-रय० धीरेन्द्र चम्पनराय जी  
११-रय० प० जुगलकिशोर जी मुखनाद, १२-दि दी के  
व्यातनाम लेखक श्री जोगेंद्रकुमार जी १३-रा० लक्ष्मीचन्द जी  
म० प० (मन्ना भाटनाय लानवाठ), १४-रय प० लहेन्द्रकुमार  
। व्यापनाथ आदि ।

[ कृपया कृता पण्डित ]